कल्याण

स्वामीनाथ

वर्ष ४५] ⟶ परिशिष्टाङ्क ⟵ [अङ्क २

दुर्गति-नाशिनि दुर्गा जय जय, काल-विनाशिनि काली जय-जय।
उमा रमा ब्रह्माणी जय जय, राधा सीता रुक्मिणि जय जय॥
साम्ब सदाशिव, साम्ब सदाशिव, साम्ब सदाशिव, जय शंकर।
हर हर शंकर दुखहर सुखकर अघ-तम-हर हर हर शंकर॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
जय-जय दुर्गा, जय मा तारा। जय गणेश, जय शुभ-आगारा॥
जयति शिवाशिव जानकिराम। गौरीशंकर सीताराम॥
जय रघुनन्दन जय सियाराम। व्रज-गोपी-प्रिय राधेश्याम॥
रघुपति राघव राजाराम। पतितपावन सीताराम॥

संस्करण १,७५,०००

जय जय देवदेव जय माधव केशव। जय पद्मपलाशाक्ष जय गोविन्द गोपते॥
जय जय पद्मनाभ जय वैकुण्ठ वामन। जय पद्म हृषीकेश जय दामोदराच्युत॥
जय पद्मेश्वरानन्त जय लोकगुरो जय। जय शङ्खगदापाणे जय भूधरसूकर॥
जय यज्ञेश वाराह जय भूधर भूमिप। जय योगेश योगज्ञ जय योगप्रवर्त्तक॥
जय योगप्रवर्त्तक जय धर्मप्रवर्त्तक। कृतप्रिय जय जय यज्ञेश यज्ञाङ्ग जय॥
जय वन्दितसद्द्विज जय नारदसिद्धिद। जय पुण्यवतां गेह जय वैदिकभाजन॥
जय जय चतुर्भुज (श्री)जयदेव जय दैत्यभयावह। जय सर्वज्ञ सर्वात्मन् जय शंकर शाश्वत॥
जय विष्णो महादेव जय नित्यमधोक्षज। प्रसादं कुरु देवेश दर्शयाद्य स्वकां तनुम्॥
(न० पु० १०। २१-२८)

वार्षिक मूल्य भारतमें १०.०० विदेशमें १६.०० (१८ शिलिंग)
जय विराट जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते॥
साधारण प्रति भारतमें ६० पैसे विदेशमें रु० १.०० (१५ पेंस)
सम्पादक—हनुमानप्रसाद पोद्दार, चिम्मनलाल गोस्वामी, एम्० ए०, शास्त्री
मुद्रक-प्रकाशक—मोतीलाल जालान, गीताप्रेस, गोरखपुर

समुद्रतटपर भगवान्‌की गोदमें प्रह्लाद [नरसिंहपुराण, अ० ४३

कल्याण
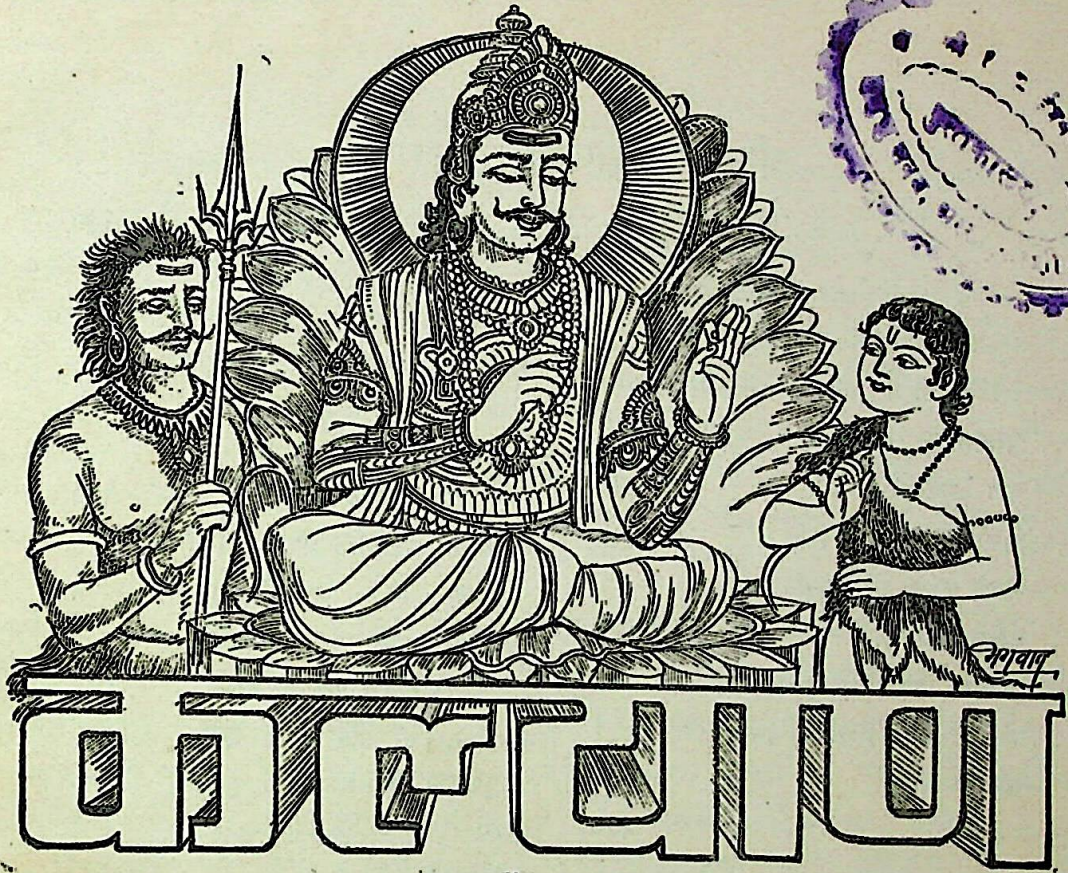
अधश्चोर्ध्वं हरिश्चाग्रे देहेन्द्रियमनोमुखे । इत्येवं संस्मरन् प्राणान् यस्त्यजेत्स हरिर्भवेत् ॥

(अग्निपुराण)

वर्ष ४५ } गोरखपुर, सौर फाल्गुन, श्रीकृष्ण-संवत् ५१९६, फरवरी १९७१ { संख्या २ पूर्ण संख्या ५३१

भगवान्‌की गोदमें स्थित प्रह्लादकी प्रार्थना

त्वद्दर्शनामृतास्वादादन्तरात्मा न तृप्यति ॥
ब्रह्मादिदेवैर्दुर्लक्ष्यं त्वामेव पश्यतः प्रभो ।
तृप्तिं नेष्यति मे चित्तं कल्पायुतशतैरपि ॥
नैवमेतद्व्यतृप्तस्य त्वां दृष्ट्वान्यद्वृणोति किम् ।

(नरसिंह० ४३ । ७४-७५½)

प्रह्लाद कहते हैं—मेरा मन आपके दर्शनरूपी अमृतका आस्वादन करनेसे तृप्त नहीं हो रहा है । प्रभो ! ब्रह्मादि देवताओंके लिये भी जिनका दर्शन पाना कठिन है, ऐसे आपका दर्शन करते हुए मेरा मन दस लाख वर्षोंमें भी तृप्त न होगा । इस प्रकार आपके दर्शनसे अतृप्त रहनेवाले मुझ सेवकका चित्त दर्शनके सिवा और क्या माँग सकता है ?

॥ श्रीहरिः ॥

श्रीनरसिंहपुराणकी विषय-सूची

चित्र-सूची

तिरपनवाँ अध्याय

बलराम-श्रीकृष्ण-अवतारके चरित्र

मार्कण्डेय उवाच

अतः परं प्रवक्ष्यामि प्रादुर्भावद्वयं शुभम् ।
तृतीयस्य तु रामस्य कृष्णस्य तु समासतः ॥ १ ॥
पुरा ह्यसुरभारार्ता मही प्राह नृपोत्तम ।
आसीनं देवमध्ये तु ब्रह्माणं कमलासनम् ॥ २ ॥

मार्कण्डेयजी कहते हैं—अब मैं तीसरे राम (बलराम) और श्रीकृष्णके युगल अवतारोंका संक्षेपमें वर्णन करूँगा। नृपश्रेष्ठ ! पूर्वकालकी बात है, पृथ्वी दैत्योंके भारसे पीडित हो देवताओंके मध्यमें विराजमान कमलासन ब्रह्माजीके पास गयी और इस प्रकार बोली ॥ १-२ ॥

देवासुरे हता ये तु विष्णुना दैत्यदानवाः ।
ते सर्वे क्षत्रिया जाताः कंसाद्याः कमलोद्भव ॥ ३ ॥
तद्भूरिभारसम्प्राप्ता सीदन्ती चतुरानन ।
मम तद्भारहानिः स्याद्यथा देव तथा कुरु ॥ ४ ॥

'कमलोद्भव ! देवासुर-संग्राममें जो-जो दैत्य और दानव भगवान् विष्णुके हाथसे मारे गये थे, वे सभी कंस आदि क्षत्रियोंके रूपमें उत्पन्न हुए हैं। चतुरानन ! उनके भारी बोझसे दबकर मैं बहुत दुखी हो गयी हूँ। देव ! मेरा वह भार जैसे भी दूर हो, वह उपाय आप करें' ॥ ३-४ ॥

तथैवमुक्तो ब्रह्माथ देवैः सह जगाम ह ।
क्षीरोदस्योत्तरं कूलं विष्णुं भक्तिविबोधितम् ॥ ५ ॥
तत्र गत्वा जगत्स्रष्टा देवैः सार्धं जनार्दनम् ।
नरसिंहं महादेवं गन्धपुष्पादिभिः क्रमात् ॥ ६ ॥
अभ्यर्च्य भक्त्या गोविन्दं वाक्पुष्पेण च केशवम् ।
पूजयामास राजेन्द्र तेन तुष्टो जगत्पतिः ॥ ७ ॥

पृथ्वीके द्वारा इस प्रकार प्रार्थना की जानेपर, कहते हैं, ब्रह्माजी समस्त देवताओंके साथ क्षीरसागरके उत्तरतटपर भगवान् विष्णुके निकट गये। उन्होंने भगवान्‌को अपनी भक्तिके प्रभावसे सोतेसे जगाया था। वहाँ पहुँचकर जगत्‌की सृष्टि करनेवाले ब्रह्माजीने समस्त देवताओंके साथ नरसिंहस्वरूप महान् देवता भगवान् जनार्दनकी गन्ध-पुष्पादिके द्वारा क्रमशः भक्तिपूर्वक पूजा की। फिर वाक्पुष्पसे भी उन गोविन्द-केशवका पूजन किया। राजेन्द्र ! इससे वे जगदीश्वर भगवान् विष्णु उनपर बहुत संतुष्ट हुए ॥ ५-७ ॥

राजोवाच

वाक्पुष्पेण कथं ब्रह्मन् ब्रह्माप्यर्चितवान् हरिम् ।
तन्मे कथय विप्रेन्द्र ब्रह्मोक्तं स्तोत्रमुत्तमम् ॥ ८ ॥

राजा बोले—ब्रह्मन् ! ब्रह्माजीने भगवान् विष्णुकी वाक्पुष्पसे किस प्रकार पूजा की ? विप्रेन्द्र ! ब्रह्माजीद्वारा कहे हुए उस उत्तम स्तोत्र (वाक्पुष्प) को आप मुझे सुनाइये ॥ ८ ॥

मार्कण्डेय उवाच

शृणु राजन् प्रवक्ष्यामि स्तोत्रं ब्रह्ममुखेरितम् ।
सर्वपापहरं पुण्यं विष्णुतुष्टिकरं परम् ॥ ९ ॥
तमाराध्य जगन्नाथमूर्ध्ववाहुः पितामहः ।
भूत्वैकाग्रमना राजन्निदं स्तोत्रमुदीरयत् ॥ १० ॥

मार्कण्डेयजी बोले—राजन् ! मैं ब्रह्माजीके मुखसे निकले हुए उस उत्तम स्तोत्रको कहता हूँ, सुनो ! वह स्तोत्र समस्त पापोंको हरनेवाला, पवित्र तथा भगवान् विष्णुको अत्यन्त संतुष्ट करनेवाला है। राजन् ! ब्रह्माजीने पूर्वोक्त रूपसे भगवान् जगन्नाथकी पूजा करके एकाग्रचित्त हो इस स्तोत्रका पाठ किया ॥ ९-१० ॥

ब्रह्मोवाच

नमामि देवं नरनाथमच्युतं
नारायणं लोकगुरुं सनातनम् ।
अनादिमव्यक्तमचिन्त्यमव्ययं
वेदान्तवेद्यं पुरुषोत्तमं हरिम् ॥ ११ ॥
आनन्दरूपं परमं परात्परं
चिदात्मकं ज्ञानवतां परां गतिम् ।
सर्वात्मकं सर्वगतैकरूपं
ध्येयस्वरूपं प्रणमामि माधवम् ॥ १२ ॥
भक्तप्रियं कान्तमतीव निर्मलं
सुराधिपं सूरिजनैरभिष्टुतम् ।

चतुर्भुजं नीरजवर्णमीश्वरं
रथाङ्गपाणिं प्रणतोऽस्मि केशवम् ॥१३॥
गदासिशङ्खाब्जकरं श्रियः पतिं
सदाशिवं शार्ङ्गधरं रविप्रभम्।
पीताम्बरं हारविराजितोदरं
नमामि विष्णुं सततं किरीटिनम् ॥१४॥
गण्डस्थलासक्तसुरक्तकुण्डलं
सुदीपिताशेषदिशं निजत्विषा।
गन्धर्वसिद्धैरुपगीतमृग्ध्वनिं
जनार्दनं भूतपतिं नमामि तम् ॥१५॥
हत्वासुरान् पाति युगे युगे सुरान्
स्वधर्मसंस्थान् भुवि संस्थितो हरिः।
करोति सृष्टिं जगतः क्षयं य-
स्तं वासुदेवं प्रणतोऽस्मि केशवम् ॥१६॥

ब्रह्माजी बोले—मैं सम्पूर्ण जीवोंके स्वामी भगवान् अच्युतको, सनातन लोकगुरु भगवान् नारायणको नमस्कार करता हूँ। जो अनादि, अव्यक्त, अचिन्त्य और अविनाशी हैं, उन वेदान्तवेद्य पुरुषोत्तम श्रीहरिको प्रणाम करता हूँ। जो परमानन्दस्वरूप, परात्पर, ज्ञानमय एवं ज्ञानियोंके परम आश्रय हैं तथा जो सर्वमय, सर्वव्यापक, अद्वितीय और सबके ध्येयरूप हैं, उन भगवान् लक्ष्मीपतिको मैं प्रणाम करता हूँ। जो भक्तोंके प्रेमी, अत्यन्त कमनीय और दोषोंसे रहित हैं, जो समस्त देवताओंके स्वामी हैं, विद्वान् पुरुष जिनकी स्तुति करते हैं, जिनके चार भुजाएँ हैं, नीलकमलके समान जिनकी श्यामल कान्ति है, जो हाथमें चक्र धारण किये रहते हैं, उन परमेश्वर केशवको मैं प्रणाम करता हूँ। जिनके हाथोंमें गदा, तलवार, शङ्ख और कमल सुशोभित हैं, जो लक्ष्मीजीके पति हैं, सदा ही कल्याण करनेवाले हैं, जो शार्ङ्ग धनुष धारण किये रहते हैं, जिनकी सूर्यके समान कान्ति है, जो पीत वस्त्र धारण किये रहते हैं, जिनका उदरभाग हारसे विभूषित है तथा जिनके मस्तकपर मुकुट शोभा पा रहा है, उन भगवान् विष्णुको मैं सदा प्रणाम करता हूँ। जिनके कपोलोंपर सुन्दर रक्तवर्ण कुण्डल शोभा पा रहे हैं, जो अपनी कान्तिसे सम्पूर्ण दिशाओंको प्रकाशित कर रहे हैं, गन्धर्व और सिद्धगण जिनका सुयश गाते रहते हैं तथा जिनका वैदिक ऋचाओंद्वारा यशोगान किया जाता है, उन भूतनाथ भगवान् जनार्दनको मैं प्रणाम करता हूँ। जो भगवान् प्रत्येक युगमें पृथ्वीपर अवतार ले, देवद्रोही दानवोंकी हत्या करके अपने धर्ममें स्थित देवताओंकी रक्षा करते हैं तथा जो इस जगत्की सृष्टि एवं संहार करते हैं, उन सर्वान्तर्यामी भगवान् केशवको मैं प्रणाम करता हूँ ॥ ११—१६ ॥

यो मत्स्यरूपेण रसातलस्थितान्
वेदान् समाहृत्य मम प्रदत्तवान्।
निहत्य युद्धे मधुकैटभावुभौ
तं वेदवेद्यं प्रणतोऽस्म्यहं सदा ॥१७॥
देवासुरैः क्षीरसमुद्रमध्यतो
न्यस्तो गिरिर्येन धृतः पुरा महान्।
हिताय कौर्मं वपुरास्थितो य-
स्तं विष्णुमाद्यं प्रणतोऽस्मि भास्करम् ॥१८॥
हत्वा हिरण्याक्षमतीव दर्पितं
वराहरूपी भगवान् सनातनः।
यो भूमिमेतां सकलां समुद्धर-
स्तं वेदमूर्तिं प्रणमामि सूकरम् ॥१९॥
कृत्वा नृसिंहं वपुरात्मनः परं
हिताय लोकस्य सनातनो हरिः।
जघान यस्तीक्ष्णनखैर्दितेः सुतं
तं नारसिंहं पुरुषं नमामि ॥२०॥
यो वामनोऽसौ भगवाञ्जनार्दनो
बलिं बबन्ध त्रिभिरूर्जितैः पदैः।
जगत्त्रयं क्रम्य ददौ पुरंदरे
तदेवमाद्यं प्रणतोऽस्मि वामनम् ॥२१॥
यः कार्तवीर्यं निजघान रोषात्
त्रिस्सप्तकृत्वः क्षितिपात्मजानपि।
तं जामदग्न्यं क्षितिभारनाशकं
नतोऽस्मि विष्णुं पुरुषोत्तमं सदा ॥२२॥
सेतुं महान्तं जलधौ बबन्ध यः
सम्प्राप्य लङ्कां सगणं दशाननम्।

जघान भृत्यै जगतां सनातनं
तं रामदेवं सततं नतोऽस्मि ॥२३॥
यथा तु वाराहनृसिंहरूपैः
कृतं त्वया देव हितं सुराणाम् ।
तथाद्य भूमेः कुरु भारहानिं
प्रसीद विष्णो भगवन्नमस्ते ॥२४॥

जिन्होंने युद्धमें मधु और कैटभ—इन दोनों दैत्योंको मारा तथा मत्स्यरूप धारण करके रसातलमें पहुँचे हुए वेदोंको लाकर मुझे दिया था, उन वेद-वेद्य परमेश्वरको मैं सदा ही प्रणाम करता हूँ। पूर्वकालमें जिन्होंने देवता और असुरोंद्वारा क्षीरसमुद्रमें डाले हुए महान् मन्दराचलको सबका हित करनेके लिये कूर्म-रूपसे पीठपर धारण किया था, उन प्रकाश देनेवाले आदिदेव भगवान् विष्णुको मैं प्रणाम करता हूँ। जिन सनातन भगवान्ने वराहरूप धारण करके इस सम्पूर्ण वसुंधराका जलसे उद्धार किया और उसी समय अत्यन्त अभिमानी दैत्य हिरण्याक्षको मार गिराया था, उन वेदमूर्ति सूकररूपधारी भगवान्को प्रणाम करता हूँ। जिन सनातन भगवान् श्रीहरिने त्रिलोकीका हित करनेके लिये स्वयं ही श्रेष्ठ नृसिंहरूप धारण करके अपने तीखे नखोंद्वारा दिति-नन्दन हिरण्यकशिपुका वध किया था, उन परम पुरुष भगवान् नरसिंहको मैं प्रणाम करता हूँ। जिन वामनरूपधारी भगवान् जनार्दनने बलिको बाँधा था और अपने बढ़े हुए तीन पगोंसे त्रिभुवनको नापकर उसे इन्द्रको दे दिया था, उन आदिदेव वामनको मैं प्रणाम करता हूँ। जिन्होंने कोपवश राजा कार्तवीर्यको मार डाला तथा इक्कीस बार क्षत्रियोंका संहार किया, पृथ्वीका भार दूर करनेवाले परशुरामरूपधारी उन पुरुषोत्तम भगवान् विष्णु-को मैं सदा नमस्कार करता हूँ। जिन्होंने समुद्रमें बहुत बड़ा पुल बाँधा और लङ्कामें पहुँचकर त्रिलोकीकी रक्षाके लिये रावणको उसके गणोंसहित मार डाला था, उन सनातन पुरुष भगवान् श्रीरामको मैं सदा प्रणाम करता हूँ। भगवन्! विष्णो! जिस प्रकार [पूर्वकालमें] वाराह-नृसिंह आदि रूपोंसे आपने देवताओंका हित किया है, उसी प्रकार आज भी प्रसन्न होकर पृथ्वीका भार दूर करें। देव! आपको सादर नमस्कार है ॥ १७–२४ ॥

श्रीमार्कण्डेय उवाच

इति स्तुतो जगन्नाथः श्रीधरः पद्मयोनिना ।
आविर्बभूव भगवाञ्शङ्खचक्रगदाधरः ॥२५॥
उवाच च हृषीकेशः पद्मयोनिं सुरानपि ।
स्तुत्यानयाहं संतुष्टः पितामह दिवौकसः ॥२६॥
पठतां पापनाशाय नृणां भक्तिमतामपि ।
यतोऽस्मि प्रकटीभूतो दुर्लभोऽपि हरिः सुराः ॥२७॥
देवैः सेन्द्रैः सरुद्रैस्तु पृथ्व्या च प्रार्थितो ह्यहम् ।
पद्मयोने वदाद्य त्वं श्रुत्वा तत्करवाणि ते ॥२८॥

श्रीमार्कण्डेयजी कहते हैं—ब्रह्माजीके इस प्रकार स्तुति करनेपर जगत्पति भगवान् लक्ष्मीधर हाथमें शङ्ख, चक्र और गदा धारण किये वहाँ प्रकट हुए तथा वे भगवान् हृषीकेश ब्रह्माजी और देवताओंसे बोले—'पितामह! देवताओ! मैं तुम्हारी इस स्तुतिसे बहुत ही प्रसन्न हूँ। देवगण! यह स्तोत्र इसका पाठ करनेवालोंके सारे पाप नष्ट करनेमें समर्थ है। यद्यपि मैं श्रीहरिके रूपमें भक्तिमान् पुरुषोंको भी कठिनता-से ही प्राप्त होता हूँ, तथापि इस स्तोत्रके प्रभावसे मैं प्रत्यक्ष प्रकट हो गया हूँ। ब्रह्माजी! आज रुद्र और इन्द्रसहित समस्त देवताओं तथा पृथिवीने मेरी प्रार्थना की है, अतः तुम-लोग अपना मनोरथ कहो; उसे सुनकर पूर्ण करूँगा' ॥ २५–२८ ॥

इत्युक्ते विष्णुना प्राह ब्रह्मा लोकपितामहः ।
दैत्यानां गुरुभारेण पीडितेयं मही भृशम् ॥२९॥
लघ्वीमिमां कारयितुं त्वयाहं पुरुषोत्तम ।
तेनागतः सुरैः सार्धं नान्यदस्तीति कारणम् ॥३०॥

भगवान् विष्णुके यों कहनेपर लोकपितामह ब्रह्माजी बोले—'पुरुषोत्तम! यह पृथ्वी दैत्योंके गुरुतर भारसे अत्यन्त पीडित हो रही है। अतः मैं आपके द्वारा इस वसुधाके भारको उतरवानेके लिये यहाँ देवताओंके साथ आया हूँ। मेरे आनेका दूसरा कोई कारण नहीं है' ॥ २९-३० ॥

इत्युक्तो भगवान् प्राह गच्छध्वममराः स्वकम् ।
स्थानं निरामयाः सर्वे पद्मयोनिस्तु गच्छतु ॥३१॥
देवक्यां वसुदेवाच्च अवतीर्य महीतले ।
सितकृष्णे च मच्छक्ती कंसादीन् घातयिष्यतः ॥३२॥

यह सुनकर भगवान्ने कहा—'देवगण! तुमलोग निश्चिन्त होकर अपने-अपने स्थानको लौट जाओ। ब्रह्माजी भी चले जायँ। मेरी गौर और कृष्ण—दो शक्तियाँ पृथ्वीपर वसुदेवजीके वीर्य एवं देवकीके गर्भसे अवतार लेकर कंस आदि असुरोंका वध करेंगी' ॥ ३१-३२ ॥

इत्याकर्ण्य हरेर्वाक्यं हरिं नत्वा ययुः सुराः ।
गतेषु त्रिदिवौकस्सु देवदेवो जनार्दनः ॥३३॥
शिष्टानां पालनार्थाय दुष्टनिग्रहणाय च ।
प्रेषयामास ते शक्ती सितकृष्णे स्वके नृप ॥३४॥
तयोः सिता च रोहिण्यां वसुदेवाद्बभूव ह ।
तद्वत्कृष्णा च देवक्यां वसुदेवाद्बभूव ह ॥३५॥
रौहिणेयोऽथ पुण्यात्मा रामनामाश्रितो महान् ।
देवकीनन्दनः कृष्णस्तयोः कर्म शृणुष्व मे ॥३६॥

भगवान्‌का यह वचन सुनकर सभी देवता उनको प्रणाम करके चले गये । राजन् ! देवताओंके चले जानेपर देवदेव जनार्दनने सज्जनोंकी रक्षा और दुष्टोंका संहार करनेके लिये अपनी वे गौर-कृष्ण—दो शक्तियाँ भेजीं । उनमेंसे गौर शक्ति वसुदेवद्वारा रोहिणीके गर्भसे प्रकट हुई तथा कृष्ण शक्तिने वसुदेवके अंश एवं देवकीके गर्भसे अवतार लिया । पुण्यात्मा महापुरुष रोहिणीनन्दनने 'राम' नाम धारण किया और देवकीनन्दनका 'श्रीकृष्ण' नाम रक्खा गया । नरेश्वर ! तुम उन दोनोंके कर्म मुझसे सुनो ॥ ३३–३६ ॥

गोकुले बालकाले तु राक्षसी शकुनी निशि ।
रामेण निहता राजन् तथा कृष्णेन पूतना ॥३७॥
धेनुकः सगणस्तालवने रामेण घातितः ।
शकटश्चार्जुनौ वृक्षौ तद्वत्कृष्णेन घातितौ ॥३८॥
प्रलम्बो निधनं नीतो दैत्यो रामेण मुष्टिना ।
कालियो दमितस्तोये कालिन्द्यां विषपन्नगः ॥३९॥
गोवर्द्धनश्च कृष्णेन धृतो वर्षति वासवे ।
गोकुलं रक्षता तेन अरिष्टश्च निपातितः ॥४०॥
केशी च निधनं नीतो दुष्टवाजी महासुरः ।
अक्रूरेण च तौ नीतौ मथुरायां महात्मना ॥४१॥
ददर्श तु निमग्नश्च रामकृष्णौ महामते ।
स्वं स्वं रूपं जले तस्य अक्रूरस्य विभूतिदम् ॥४२॥
अनयोर्भावमतुलं ज्ञात्वा दृष्ट्वा च यादवाः ।
बभूवुः प्रीतमनसो ह्यक्रूरश्च नृपात्मज ॥४३॥

राजन् ! गोकुलमें रामने बाल्यकालमें ही रात्रिके समय एक पक्षीरूपधारिणी राक्षसीको मारा था और श्रीकृष्णने 'पूतना'का संहार किया था । रामने तालवनमें 'धेनुक' नामक राक्षसको उसके गणोंसहित मारा था और श्रीकृष्णने भी शकट उलट दिया तथा 'यमलार्जुन' नामक दो वृक्षोंको उखाड़ दिया था । रामने 'प्रलम्ब' नामक राक्षसको मुक्केसे मारकर मौतके घाट उतारा तथा श्रीकृष्णने यमुनाके जलमें रहनेवाले विषैले सर्प 'कालिय'का दमन किया और इन्द्रके वर्षा करते समय वे सात दिनोंतक हाथपर गोवर्धनपर्वत धारण किये खड़े रहे । इतना ही नहीं, श्रीकृष्णने गोकुलकी रक्षा करते हुए अरिष्टासुरका भी वध किया था । फिर दुष्ट घोड़का रूप धारण करनेवाले महान् असुर केशीका उन्होंने संहार किया; इसके बाद महात्मा अक्रूरजी [कंसकी आज्ञासे] आये तथा राम और कृष्ण—दोनों बन्धुओंको मथुरा ले गये । महामते ! मार्गमें अक्रूरजीने यमुनामें डुबकी लगाते समय जलके भीतर राम और कृष्ण—दोनोंको देखा । उन दोनों बन्धुओंने अक्रूरजीको अपने-अपने ऐश्वर्यदायक स्वरूपका दर्शन कराया । नृपनन्दन ! उन दोनोंके अनुपम स्वरूपको देख और जानकर अक्रूरजीके साथ ही समस्त यादवगण बहुत ही प्रसन्न हुए ॥ ३७–४३ ॥

दुर्वचश्च प्रजल्पन्तं कंसस्य रजकं ततः ।
कृष्णो जघान रामश्च तद्वस्त्रं ब्रह्मणे ददौ ॥४४॥
मालाकारेण भक्त्या तु सुमनोभिः प्रपूजितौ ।
ततस्तस्य वरान्दत्त्वा दुर्लभान् रामकेशवौ ॥४५॥
गच्छन्तौ राजमार्गे तु कुब्जया पूजितौ ततः ।
तत्कौटिल्यमपानीय विरूपं कार्मुकं ततः ॥४६॥
बभञ्ज कृष्णो बलवान् कंसस्याकृष्य तत्क्षणात् ।
रक्षपालान् जघानाथ रामस्तत्र खलान् बहून् ।
हत्वा कुवलयाख्यं च गजं रामजनार्दनौ ॥४७॥

तत्पश्चात् [मथुरामें भ्रमण करते समय] कटुवचन कहनेवाले कंसके एक धोबीको कृष्ण और रामने मार डाला तथा उसके वस्त्र ब्राह्मणोंको बाँट दिये । फिर मार्गमें एक मालीने फूलोंसे भक्तिपूर्वक उनकी पूजा की । तब राम और श्रीकृष्णने उसे दुर्लभ वर दिये । उसके बाद जब वे सड़कपर घूम रहे थे, उसी समय 'कुब्जा' दासीने आकर उनका आदर-सत्कार किया । तब श्रीकृष्णने उसकी भद्दी लगनेवाली कुब्जता-को दूर कर दिया । तदनन्तर [यज्ञशालामें रक्खे गये] कंसके धनुषको महाबली श्रीकृष्णने [बलपूर्वक] खींचा और तत्काल ही

तोड़ डाला। उस समय वहाँके अनेकों दुष्ट रक्षकोंको बलरामजीने मार डाला। फिर बलराम और श्रीकृष्ण—दोनोंने मिलकर 'कुवलयापीड' नामक हाथीको भी मार गिराया ॥४४–४७॥

प्रविश्य रङ्गं गजदन्तपाणी
मदानुलिप्तौ वसुदेवपुत्रौ।
युद्धे तु रामो निजघान मल्लं
शैलोपमं मुष्टिकमव्ययात्मा ॥४८॥
कृष्णोऽपि चाणूरमतिप्रसिद्धं
बलेन वीर्येण च कंसमल्लकम्।
युद्ध्वा तु तेनाथ चिरं जघान
तं दैत्यमल्लं जनसंसदीशः ॥४९॥
मृतस्य मल्लस्य च मुष्टिकस्य
मित्रं पुनः पुष्करकं स रामः।
युद्धार्थमुत्थाय कृतक्षणं तं
मुष्टिप्रहारेण जघान वीरः ॥५०॥
कृष्णः पुनस्तान् सकलान्निहत्य
निगृह्य कंसं विनिपात्य भूमौ।
स्वयं च देहे विनिपत्य तस्य
हत्वा तथोर्व्यां निचकर्ष कृष्णः ॥५१॥
हते तु कंसे हरिणातिक्रुद्धो
भ्रातापि तस्यातिरुषेण चोत्थितः।
सुनाभसंज्ञो बलवीर्ययुक्तो
रामेण नीतो यमसादनं क्षणात् ॥५२॥

तदनन्तर उन दोनों वसुदेवकुमारोंने हाथीके दाँत उखाड़कर हाथमें ले लिये और उसके मदसे सने हुए ही रङ्ग-भूमिमें प्रवेश किया। वहाँ अविनाशी बलरामजीने पर्वताकार 'मुष्टिक' नामक पहलवानको कुश्तीमें मार डाला और श्रीकृष्ण-चन्द्रने भी कंसके 'चाणूर' नामक पहलवानका, जो अपने बल और पराक्रमके कारण बहुत ही प्रसिद्ध था, कचूमर निकाल दिया। भगवान् श्रीकृष्णने उस जन-समाजमें दैत्य मल्ल चाणूरके साथ देरतक युद्ध करनेके बाद उसका वध किया था। फिर वीरवर बलरामजीने युद्धके लिये उत्साहपूर्वक उठे हुए पुष्करको, जो 'मृत मुष्टिक' नामक मल्लका मित्र था, मुक्केसे ही मार डाला। इसके बाद श्रीकृष्णने वहाँ उपस्थित समस्त दैत्योंका संहार करके कंसको पकड़ लिया और उसे मञ्चके नीचे भूमिपर पटककर वे स्वयं भी उसके शरीरपर कूद पड़े। इस प्रकार कंसका वध करके श्रीकृष्णने उसके मृत देहको भूमिपर घसीटा। श्रीकृष्णद्वारा कंसके मारे जानेपर उसका बलवान् एवं पराक्रमी भ्राता सुनाभ अत्यन्त क्रोधपूर्वक युद्धके लिये उठा; किंतु उसे भी बलरामजीने तुरंत ही मारकर यमलोक भेज दिया ॥ ४८–५२ ॥

तौ वन्द्य मातापितरौ सुहृष्टौ
जनैः समस्तैर्यदुभिः सुसंवृतौ।
कृत्वा नृपं चोग्रसेनं यदूनां
सभां सुधर्मां ददतुर्महेन्द्रीम् ॥५३॥

तदनन्तर समस्त यदुवंशियोंसे घिरे हुए उन दोनों भाइयोंने अत्यन्त प्रसन्न हुए माता-पिताकी वन्दना करके श्रीउग्रसेनको ही यदुवंशियोंका राजा बनाया और उन्हें इन्द्रकी 'सुधर्मा' नामक दिव्य सभा प्रदान की ॥ ५३ ॥

सर्वज्ञभावावपि रामकृष्णौ
सम्प्राप्य सांदीपनितोऽस्त्रविद्याम्।
गुरोः कृते पञ्चजनं निहत्य
यमं च जित्वा गुरवे सुतं ददौ ॥५४॥

यद्यपि बलराम और श्रीकृष्ण सर्वज्ञ थे, तो भी उन्होंने सांदीपनिसे अस्त्र-विद्याकी शिक्षा पायी। फिर गुरुको दक्षिणा देनेके लिये उद्यत हो, 'पञ्चजन' दैत्यको मारा और यमराजको जीतकर वे दीर्घकालके मरे हुए गुरुपुत्रको वहाँसे ले आये। वही पुत्र उन्होंने गुरुजीको दक्षिणाके रूपमें अर्पित किया ॥ ५४ ॥

निहत्य रामो मगधेश्वरस्य
बलं समस्तं बहुशः समागतम्।
दिव्यास्त्रपूरैरमराविमावुभौ
शुभां पुरीं चक्रतुः सागरान्ते ॥५५॥
तस्यां विधायाथ जनस्य वासं
हत्वा शृगालं हरिरव्ययात्मा।
दग्ध्वा महान्तं यवनं ह्युपाया-
द्दूरं च दत्त्वा नृपतेर्जगाम ॥५६॥

फिर बलरामजीने अपने ऊपर अनेकों बार चढ़ाई करने

वाले मगधराज जरासंधके समस्त सैनिकोंको दिव्यास्त्रोंकी वर्षा करके मार डाला। इसके बाद उन दोनों देवेश्वरोंने समुद्रके भीतर एक सुन्दर पुरी द्वारकाका निर्माण कराया। उसमें मथुरावासी कुटुम्बीजनोंको बसाकर अविनाशी भगवान् श्रीकृष्णने राजा शृगालका वध किया। फिर एक उपाय करके महान् योद्धा यवनराजको भस्म कर, राजा मुचुकुन्दको वरदान दे, वे द्वारकामें लौट गये ॥ ५५-५६ ॥

रामोऽथ संशान्तसमस्तविग्रहः
सम्प्राप्य नन्दस्य पुनः स गोकुलम्।
वृन्दावने गोपजनैः सुभाषितः
सीरेण रामो यमुनां चकर्ष ॥५७॥
सम्प्राप्य भार्यामथ रेवतीं च
रेमे तया द्वारवतीं स लाङ्गली।
क्षात्रेण सम्प्राप्य तदा स रुक्मिणीं
कृष्णोऽपि रेमे पुरुषः पुराणः ॥५८॥
द्यूते कलिङ्गराजस्य दन्तानुत्पाट्य लाङ्गली।
जघानाष्टपदेनैव रुक्मिणं चानृतान्वितम् ॥५९॥
कृष्णः प्राग्ज्योतिषो दैत्यान् हयग्रीवादिकान् बहून्।
हत्वा तु नरकं चापि जग्राह च महद्धनम् ॥६०॥
अदित्यै कुण्डले दत्त्वा जित्वेन्द्रं दैवतैः सह।
गृहीत्वा पारिजातं तु ततो द्वारावतीं पुरीम् ॥६१॥

तत्पश्चात् सारा बखेड़ा समाप्त हो जानेपर बलरामजी एक बार फिर नन्दके गोकुल (नन्दगाँव) में गये और वहाँ वृन्दावनमें गोपजनोंसे भलीभाँति प्रेमालाप आदिके द्वारा सम्मानित हुए। वहाँ उन्होंने अपने हलसे यमुनाजीका आकर्षण किया था। तदनन्तर द्वारकामें 'रेवती' नामकी भार्याको पाकर बलरामजी उनके साथ सुखपूर्वक रहने लगे और पुराण-पुरुष श्रीकृष्णचन्द्र भी क्षत्रियधर्मके अनुसार 'रुक्मिणी' नामक भार्याको हस्तगत करके उसके साथ सानन्द विहार करने लगे। तदनन्तर एक बार जूआ खेलते समय हलधरने कलिङ्गराजके दाँतोंको उखाड़ लिया और असत्यका आश्रय लेनेवाले रुक्मीको भी पासेसे ही मार गिराया। इसी प्रकार श्रीकृष्णचन्द्रने भी प्राग्ज्योतिषपुरके हयग्रीव आदि बहुत-से दैत्योंको यमलोक पहुँचाया तथा नरकासुरका भी संहार करके वे उसके यहाँसे बहुत धन ले आये। वहाँसे श्रीकृष्ण इन्द्रलोकमें गये। वहाँ उन्होंने अदितिको उनके वे दोनों दिव्य कुण्डल दिये, जो नरकासुरने हड़प लिये थे। फिर देवताओंसहित इन्द्रको जीतकर पारिजात वृक्ष साथ ले, वे अपनी पुरी द्वारकाको लौट आये ॥ ५७-६१ ॥

कुरुभिश्च धृतं साम्बं राम एको महाबलः।
कुरूणां भयमुत्पाद्य मोचयामास वीर्यवान् ॥६२॥
बाणबाहुवनं छिन्नं कृष्णेन युधि धीमता।
रामेण तद्बलं नीतं क्षयं कोटिगुणं क्षणात् ॥६३॥
देवापकारी रामेण निहतो वानरो महान्।
ततोऽर्जुनस्य साहाय्यं कुर्वता कंसशत्रुणा ॥६४॥
सर्वभूतवधाद्राजन् भुवो भारोऽवरोपितः।
तीर्थयात्रा कृता तद्वद्रामेण जगतः कृते ॥६५॥

तदनन्तर महाबली एवं महापराक्रमी बलरामजीने अकेले ही हस्तिनापुरमें जा कौरवोंको भय दिखाया और उनके द्वारा बंदी बनाये गये [श्रीकृष्णपुत्र] साम्बको छुड़ाया। फिर बुद्धिमान् श्रीकृष्णचन्द्रने युद्धमें बाणासुरकी भुजाओंको काट डाला और बलरामजीने उसके करोड़ों सैनिकोंका क्षणभरमें ही संहार कर दिया। इसके बाद बलरामजीने देववैरी 'द्विविद' नामक महान् वानरका वध किया। इसी तरह भगवान् श्रीकृष्णने अर्जुनकी सहायता करके उनके द्वारा समस्त दुष्ट क्षत्रियोंका वध कराया और पृथ्वीका सारा भार उतार दिया। उन दिनों बलरामजी लोकहितके लिये तीर्थयात्रा कर रहे थे ॥ ६२-६५ ॥

रामेण निहता ये तु तान्न संख्यातुमुत्सहे।
एवं तौ रामकृष्णौ तु कृत्वा दुष्टवधं नृप ॥६६॥
अवतार्य भुवो भारं जग्मतुः स्वेच्छया दिवम्।
इत्येतौ कथितौ दिव्यौ प्रादुर्भावौ मया तव।
संक्षेपाद्रामकृष्णस्य काल्क्यं शृणु ममाधुना ॥६७॥
इत्थं हि शक्ती सितकृष्णरूपे
हरेरनन्तस्य महाबलाढ्ये।
कृत्वा तु भूमेर्नृप भारहानिं
पुनश्च विष्णुं प्रतिजग्मतुस्ते ॥६८॥

इति श्रीनरसिंहपुराणे कृष्णप्रादुर्भावो नाम त्रिपञ्चाशोऽध्यायः ॥५३॥

राजन् ! बलराम और श्रीकृष्णचन्द्रने जितने दुष्टोंका वध किया था, उनकी गणना हम नहीं कर सकते। इस प्रकार दोनों भाई बलराम और श्रीकृष्णने दुष्टोंका संहार करके भूमिका भार दूर किया। फिर वे स्वेच्छानुसार वैकुण्ठधामको पधार गये। इस तरह राम और श्रीकृष्णके इन दिव्य अवतारोंको मैंने तुम्हें संक्षेपसे कह सुनाया। अब मुझसे 'कल्कि-अवतार' का वर्णन सुनो। नरेश्वर ! इस प्रकार अनन्त भगवान् विष्णुकी वे दोनों महाबलवती गौर और कृष्ण शक्तियाँ पृथ्वीका भार उतारकर पुनः अपने विष्णुस्वरूपमें लीन हो गयीं ॥ ६६—६८ ॥

इस प्रकार श्रीनरसिंहपुराणमें 'श्रीकृष्णका प्रादुर्भाव' नामक तिरपनवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ५३ ॥

चौवनवाँ अध्याय

कल्कि-चरित्र और कलि-धर्म

मार्कण्डेय उवाच

अतः परं प्रवक्ष्यामि शृणु राजन् समाहितः।
प्रादुर्भावं हरेः पुण्यं कल्क्याख्यं पापनाशनम् ॥ १ ॥
कलिकालेन राजेन्द्र नष्टे धर्मे महीतले।
वृद्धिंगते तथा पापे व्याधिसम्पीडिते जने ॥ २ ॥
देवैः सम्प्रार्थितो विष्णुः क्षीराब्धौ स्तुतिपूर्वकम्।
साम्भलाख्ये महाग्रामे नानाजनसमाकुले ॥ ३ ॥
नाम्ना विष्णुयशःपुत्रः कल्की राजा भविष्यति।
अश्वमारुह्य खड्गेन म्लेच्छानुत्सादयिष्यति ॥ ४ ॥
म्लेच्छान् समस्तान् क्षितिनाशभूतान्
हत्वा स कल्की पुरुषोत्तमांशः।
कृत्वा च यागं बहुकाञ्चनाख्यं
संस्थाप्य धर्मं दिवमारुरोह ॥ ५ ॥
दशावताराः कथितास्तवैव
हरेर्मया पार्थिव पापहन्तुः।
इमं सदा यस्तु नृसिंहभक्तः
शृणोति नित्यं स तु याति विष्णुम् ॥ ६ ॥

मार्कण्डेयजी बोले—राजन् ! इसके बाद मैं तुमसे भगवान् विष्णुके 'कल्कि' नामक पावन अवतारका वर्णन करता हूँ, जो समस्त पापोंको नष्ट करनेवाला है; तुम सावधान होकर सुनो। राजेन्द्र ! जब कलिकालद्वारा पृथ्वीपर धर्मका नाश हो जायगा, पाप बढ़ जायगा और सभी लोग नाना प्रकारके रोगोंसे पीड़ित होने लगेंगे, तब देवतालोग क्षीरसागरके तटपर जाकर वहाँ भगवान् विष्णुकी स्तुति करते हुए उनसे प्रार्थना करेंगे। तदनन्तर भगवान् 'साम्भल' नामक महान् ग्राममें, जो बहुसंख्यक मनुष्योंसे परिपूर्ण होगा, विष्णुयशाके पुत्ररूपसे अवतार ले, 'कल्कि' नामसे विख्यात राजा होंगे। फिर वे घोड़ेपर चढ़कर, हाथमें तलवार ले, म्लेच्छोंका नाश करेंगे। इस प्रकार भगवान् विष्णुके अंशभूत 'कल्कि' भूमण्डलका ध्वंस करनेवाले समस्त म्लेच्छोंका संहार कर, 'बहुकाञ्चन' नामक यज्ञ करके, धर्मकी स्थापना कर स्वर्गारूढ हो जायँगे। राजेन्द्र ! पापोंका नाश करनेवाले भगवान् विष्णुके इन दस अवतारोंका मैंने वर्णन किया। जो भगवद्भक्त पुरुष इन अवतार-चरित्रोंका नित्य श्रवण करता है, वह भगवान् विष्णुको प्राप्त कर लेता है ॥ १—६ ॥

राजोवाच

तव प्रसादाद्विप्रेन्द्र प्रादुर्भावाः श्रुता मया।
नारायणस्य देवस्य शृण्वतां कल्मषापहाः ॥ ७ ॥
कलिं विस्तरतो ब्रूहि त्वं हि सर्वविदां वरः।
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्च मुनिसत्तम ॥ ८ ॥
किमाहाराः किमाचारा भविष्यन्ति कलौ युगे।

राजा बोले—विप्रेन्द्र ! आपके प्रसादसे मैंने भगवान् नारायणके अवतारोंका, जो श्रोताओंके पापोंका नाश करनेवाले हैं, श्रवण कर लिया। मुनिसत्तम ! अब आप कलिका विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिये; क्योंकि आप सर्वज्ञ महात्माओंमें सबसे श्रेष्ठ हैं। कृपया बताइये कि कलियुगमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र कैसे आहार और आचरणवाले होंगे ॥ ७-८½ ॥

सूत उवाच

शृणुध्वमृषयः सर्वे भरद्वाजेन संयुताः ॥ ९ ॥
सर्वे धर्मा विनश्यन्ति कृष्णे कृष्णत्वमागते।
तस्मात्कलिर्महाघोरः सर्वपापस्य साधकः ॥ १० ॥

ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्रा धर्मपराङ्मुखाः।
घोरे कलियुगे प्राप्ते द्विजदेवपराङ्मुखाः॥११॥
व्याजधर्मरताः सर्वे दम्भाचारपरायणाः।
असूयानिरताश्चैव वृथाहंकारदूषिताः॥१२॥
सर्वैः संक्षिप्यते सत्यं नरैः पण्डितगर्वितैः।
अहमेवाधिक इति सर्व एव वदन्ति वै॥१३॥
अधर्मलोलुपाः सर्वे तथान्येषां च निन्दकाः।
अतः स्वल्पायुषः सर्वे भविष्यन्ति कलौ युगे॥१४॥
अल्पायुष्ट्वान्मनुष्याणां न विद्याग्रहणं द्विजाः।
विद्याग्रहणशून्यत्वादधर्मो वर्तते पुनः॥१५॥

सूतजी बोले—भरद्वाजसहित आप सभी ऋषिगण सुनें। राजाके यों प्रेरणा करनेपर मार्कण्डेयजीने कलि-धर्मका इस प्रकार निरूपण किया। भगवान् कृष्णचन्द्रके परमधाम पधार जानेपर उनके अन्तर्धानके फलस्वरूप समस्त पापोंका साधक महा-घोर कलियुग प्रकट होगा; उस समय सभी धर्म नष्ट हो जायँगे। घोर कलियुग प्राप्त होनेपर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र सभी लोग धर्म, ब्राह्मण तथा देवताओंसे विमुख हो जायँगे। सभी किसी-न-किसी व्याजसे (स्वार्थसिद्धिके लिये) ही धर्ममें प्रवृत्त होंगे; दम्भ—ढोंगका आचरण करेंगे। एक दूसरेमें दोष ढूँढ़नेवाले और व्यर्थ अभिमानसे दूषित विचारवाले होंगे। पाण्डित्यका गर्व रखनेवाले सभी मनुष्य सत्यका अपलाप करेंगे और सब लोग यही कहेंगे कि "मैं ही सबसे बड़ा हूँ"। कलियुगमें सभी अधर्मलोलुप तथा दूसरोंकी निन्दा करनेवाले होंगे, अतः सबकी आयु बहुत थोड़ी होगी। द्विजगण! मनुष्योंकी आयु अल्प होनेसे ब्राह्मणलोग अधिक विद्याध्ययन नहीं कर सकेंगे। विद्याध्ययनसे शून्य होनेके कारण उनके द्वारा पुनः अधर्मकी ही प्रवृत्ति होगी॥ ९—१५॥

ब्राह्मणाद्यास्तथा वर्णाः संकीर्यन्ते परस्परम्।
कामक्रोधपरा मूढा वृथा संतापपीडिताः॥१६॥
बद्धवैरा भविष्यन्ति परस्परवधेप्सवः।
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः सर्वे धर्मपराङ्मुखाः॥१७॥
शूद्रतुल्या भविष्यन्ति तपस्सत्यविवर्जिताः।
उत्तमा नीचतां यान्ति नीचाश्चोत्तमतां तथा॥१८॥
राजानो द्रव्यनिरतास्तथा लोभपरायणाः।
धर्मकञ्चुकसंवीता धर्मविध्वंसकारिणः॥१९॥
घोरे कलियुगे प्राप्ते सर्वाधर्मसमन्विते।
यो योऽश्वरथनागाढ्यः स स राजा भविष्यति॥२०॥
पितॄन् पुत्रा नियोक्ष्यन्ति वध्वः श्वश्रूश्च कर्मसु।
पतीन् पुत्रान् वञ्चयित्वा गमिष्यन्ति स्त्रियोऽन्यतः॥२१॥

ब्राह्मण आदि वर्णोंमें परस्पर संकरता आ जायगी। वे कामी, क्रोधी, मूर्ख और व्यर्थ संतापसे पीड़ित होंगे। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य आपसमें वैर बाँधकर एक दूसरेका वध कर देनेकी इच्छावाले होंगे। वे सभी अपने-अपने धर्मसे विमुख होंगे। तप एवं सत्यभाषणादिसे रहित होकर शूद्रके समान हो जायँगे। उत्तम वर्णवाले नीचे गिरेंगे और नीच वर्णवाले उत्तम बनेंगे। राजालोग लोभी तथा केवल धनोपार्जनमें ही प्रवृत्त रहेंगे। वे धर्मका चोला पहनकर उसीकी ओटमें धर्मका विध्वंस करनेवाले होंगे। समस्त अधर्मोंसे युक्त घोर कलियुगके आ जानेपर जो-जो घोड़े, रथ और हाथीसे सम्पन्न होंगे, वे-वे ही राजा कहे जायँगे। पुत्र अपने पितासे काम करायेंगे और बहुएँ साससे काम लेंगी। स्त्रियाँ पति और पुत्रको धोखा देकर अन्य पुरुषोंके पास जाया करेंगी॥ १६—२१॥

पुरुषाल्पं बहुस्त्रीकं श्वबाहुल्यं गवां क्षयः।
धनानि श्लाघनीयानि सतां वृत्तमपूजितम्।
खण्डवर्षी च पर्जन्यः पन्थानस्तस्करावृताः।
सर्वः सर्वं च जानाति वृद्धाननुपसेव्य च॥२२॥
न कश्चिदकविर्नाम सुरापा ब्रह्मवादिनः।
किंकराश्च भविष्यन्ति शूद्राणां च द्विजातयः॥२३॥
द्विषन्ति पितरं पुत्रा गुरुं शिष्या द्विषन्ति च।
पतिं च वनिता द्वेष्टि कलौ घोरे समागते॥२४॥
लोभाभिभूतमनसः सर्वे दुष्कर्मशीलिनः।
परान्नलोलुपा नित्यं भविष्यन्ति द्विजातयः॥२५॥
परस्त्रीनिरताः सर्वे परद्रव्यपरायणाः।
घोरे कलियुगे प्राप्ते नरं धर्मपरायणम्॥२६॥
असूयानिरताः सर्वे उपहासं प्रकुर्वते।
न व्रतानि चरिष्यन्ति ब्राह्मणा वेदनिन्दकाः॥२७॥
न यक्ष्यन्ति न होष्यन्ति हेतुवादैर्विकुत्सिताः।
द्विजाः कुर्वन्ति दम्भार्थं पितृयज्ञादिकाः क्रियाः॥२८॥

न पात्रेष्वेव दानानि कुर्वन्ति च नरास्तथा ।
क्षीरोपाधिनिमित्तेन गोषु प्रीतिं प्रकुर्वते ॥२९॥
बध्नन्ति च द्विजानेव धनार्थं राजकिंकराः ।
दानयज्ञजपादीनां विक्रीणन्ते फलं द्विजाः ॥३०॥
प्रतिग्रहं प्रकुर्वन्ति चण्डालादेरपि द्विजाः ।
कलेः प्रथमपादेऽपि विनिन्दन्ति हरिं नराः ॥३१॥

पुरुषोंकी संख्या कम और स्त्रियोंकी अधिक होगी। कुत्तोंकी अधिकता होगी और गौओंका ह्रास। सबके मनमें धनका ही महत्त्व रहेगा। सत्पुरुषोंके सदाचारका सम्मान नहीं होगा। मेघ कहीं वर्षा करेंगे, कहीं नहीं करेंगे। समस्त मार्ग चोरोंसे घिरे रहेंगे। गुरुजनोंकी सेवामें रहे बिना ही सभी लोग सब कुछ जाननेका अभिमान करेंगे। कोई भी ऐसा न होगा, जो अपनेको कवि न मानता हो। शराब पीनेवाले लोग ब्रह्मज्ञानका उपदेश करेंगे। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य शूद्रोंके सेवक होंगे। घोर कलिकाल आनेपर पुत्र पितासे, शिष्य गुरुसे और स्त्रियाँ अपने पतियोंसे द्वेष करेंगी। सबका चित्त लोभसे आक्रान्त होगा, अतएव सभी लोग दुष्कर्मोंमें प्रवृत्त होंगे। ब्राह्मण सदा दूसरोंके ही अन्नके लोभी होंगे। सभी परस्त्रीसेवी और परधनका अपहरण करनेवाले होंगे। घोर कलियुग आ जानेपर दूसरोंमें दोषदृष्टि रखनेवाले सभी लोग धर्मपरायण पुरुषोंका उपहास करेंगे। ब्राह्मणलोग वेदकी निन्दामें प्रवृत्त होकर व्रतोंका आचरण नहीं करेंगे। तर्कवादसे कुत्सित विचार हो जानेके कारण वे न तो यज्ञ करेंगे और न हवनमें ही प्रवृत्त होंगे। द्विजलोग दम्भके लिये ही पितृयज्ञ आदि क्रियाएँ करेंगे। मनुष्य प्रायः सत्पात्रको दान नहीं देंगे। लोग दूध आदिके लिये ही गौओंमें प्रेम रक्खेंगे। राजाके सिपाही धनके लिये ब्राह्मणोंको ही बाँधेंगे। द्विजलोग दान, यज्ञ और जप आदिका फल प्रायः बेचा करेंगे। ब्राह्मणलोग चण्डाल आदि अस्पृश्य जातियोंसे भी दान लेंगे। कलियुगके प्रथम चरणमें भी लोग भगवान्‌की निन्दा करनेवाले हो जायँगे॥ २२—३१॥

युगान्ते च हरेर्नाम नैव कश्चित् स्मरिष्यति ।
शूद्रस्त्रीसङ्गनिरता विधवासङ्गलोलुपाः ॥३२॥
शूद्रान्नभोगनिरता भविष्यन्ति कलौ द्विजाः ।
न च द्विजातिशुश्रूषां न स्वधर्मप्रवर्तनम् ॥३३॥
करिष्यन्ति तदा शूद्राः प्रव्रज्यालिङ्गिनोऽधमाः।
सुखाय परिवीताश्च जटिला भस्मधूर्धराः ॥३४॥
शूद्रा धर्मान् प्रवक्ष्यन्ति कूटबुद्धिविशारदाः ।
एते चान्ये च बहवः पाषण्डा विप्रसत्तमाः ॥३५॥
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्या भविष्यन्ति कलौ युगे ।
गीतवाद्यरता विप्रा वेदवादपराङ्मुखाः ॥३६॥
भविष्यन्ति कलौ प्राप्ते शूद्रमार्गप्रवर्तिनः ।
अल्पद्रव्या वृथालिङ्गा वृथाहंकारदूषिताः ॥३७॥
हर्तारो न च दातारो भविष्यन्ति कलौ युगे ।
प्रतिग्रहपरा नित्यं द्विजाः सन्मार्गशीलिनः ॥३८॥
आत्मस्तुतिपराः सर्वे परनिन्दापरास्तथा ।
विश्वासहीनाः पुरुषा देववेदद्विजातिषु ॥३९॥

कलियुगके अन्तिम समयमें तो कोई भगवान्‌के नामका स्मरणतक न करेगा। कलियुगके द्विज शूद्रोंकी स्त्रियोंके साथ सहवास करेंगे और विधवा-संगमके लिये लालायित रहेंगे तथा वे शूद्रोंका भी अन्न भक्षण करनेवाले होंगे। उस समय अधम शूद्र संन्यासका चिह्न धारणकर न तो द्विजातियोंकी सेवा करेंगे और न उनकी स्वधर्ममें ही प्रवृत्ति होगी। वे अपने सुखके लिये जनेऊ पहनेंगे, जटा रखायेंगे और शरीरमें खाक-भभूत लपेटे फिरेंगे। विप्रवरो! कूटबुद्धिमें निपुण शूद्रगण धर्मका उपदेश करेंगे। ऊपर कहे अनुसार तथा और भी तरहके बहुत-से पाखण्डी ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य कलियुगमें उत्पन्न होंगे। कलियुग आनेपर विप्रगण वेदके स्वाध्यायसे विमुख हो गाने-बजानेमें मन लगायेंगे और शूद्रोंके मार्गका अनुसरण करेंगे। कलियुगमें लोग थोड़े धनवाले, झूठा वेष धारण करनेवाले और मिथ्याभिमानसे दूषित होंगे। वे दूसरोंका धन हरण कर लेंगे, पर अपना किसीको नहीं देंगे। उस समय अच्छे पथपर चलनेवाले ब्राह्मण सदा दान लेते फिरेंगे। सभी लोग आत्मप्रशंसक और दूसरोंकी निन्दा करनेवाले होंगे। देवता, वेद और ब्राह्मणोंपरसे सबका विश्वास उठ जायगा॥ ३२—३९॥

असंश्रुतोक्तिवक्तारो द्विजद्वेषरतास्तथा ।
स्वधर्मत्यागिनः सर्वे कृतघ्ना भिन्नवृत्तयः ॥४०॥

याचकाः पिशुनाश्चैव भविष्यन्ति कलौ युगे ।
परापवादनिरता आत्मस्तुतिपरायणाः ॥४१॥
परस्वहरणोपायचिन्तकाः सर्वदा जनाः ।
अत्याह्लादपरास्तत्र भुञ्जानाः परवेश्मनि ॥४२॥
तस्मिन्नेव दिने प्रायो देवतार्चनतत्पराः ।
तत्रैव निन्दानिरता भुक्त्वा चैकत्र संस्थिताः ॥४३॥

सब लोग वेदविरुद्ध वचन बोलनेवाले और ब्राह्मणोंके द्वेषी होंगे । सभी स्वधर्मके त्यागनेवाले, कृतघ्न और अपने वर्णधर्मके विरुद्ध वृत्तिसे आजीविका चलानेवाले होंगे । कलियुगमें लोग भिखमंगे, चुगलखोर, दूसरोंकी निन्दा करनेवाले और अपनी ही प्रशंसामें तत्पर होंगे । मनुष्य सदा दूसरोंके धनका अपहरण करनेके उपायको ही सोचते रहेंगे । यदि उन्हें दूसरोंके घरमें भोजन करनेका अवसर मिल जाय तो वे बड़े ही आनन्दित होंगे और प्रायः उसी दिन वे दूसरोंको दिखानेके लिये देवताकी पूजामें प्रवृत्त होंगे । दूसरोंकी निन्दामें तत्पर रहनेवाले वे ब्राह्मण वहाँ ही सबके साथ एक आसनपर बैठकर भोजन करेंगे ॥ ४०–४३ ॥

द्विजाश्च क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्चान्ये च जातयः ।
अत्यन्तकामिनश्चैव संकीर्यन्ते परस्परम् ॥४४॥
न शिष्यो न गुरुः कश्चिन्न पुत्रो न पिता तथा ।
न भार्या न पतिश्चैव भविता तत्र संकरे ॥४५॥
शूद्रवृत्त्यैव जीवन्ति द्विजा नरकभोगिनः ।
अनावृष्टिभयप्राया गगनासक्तदृष्टयः ॥४६॥
भविष्यन्ति जनाः सर्वे तदा क्षुद्भयकातराः ।
अन्नोपाधिनिमित्तेन शिष्यान् गृह्णन्ति भिक्षवः ॥४७॥
उभाभ्यामपि पाणिभ्यां शिरःकण्डूयनं स्त्रियः ।
कुर्वन्त्यो गुरुभर्तॄणामाज्ञा भेत्स्यन्ति ता हिताः ॥४८॥
यदा यदा न यक्ष्यन्ति न होष्यन्ति द्विजातयः ।
तदा तदा कलेर्वृद्धिरनुमेया विचक्षणैः ॥४९॥
सर्वधर्मेषु नष्टेषु याति निःश्रीकतां जगत् ।

उस समय ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र—सभी जातियोंके लोग अत्यन्त कामी होंगे और एक-दूसरेसे सम्पर्क स्थापित करके वर्ण-संकर हो जायँगे । वर्ण-संकरताकी दशामें गुरु-शिष्य, पिता-पुत्र और पति-पत्नीका विचार नहीं रहेगा । नरकभोगी ब्राह्मणादि वर्ण प्रायः शूद्रवृत्तिसे ही जीविका चलायेंगे और नरकभोगी होंगे । लोगोंको प्रायः सदा अनावृष्टिका भय बना रहेगा और वे सदा आकाशकी ओर दृष्टि लगाये वृष्टिकी ही प्रतीक्षा करते रहेंगे । उस समयके सभी लोग सदा भूखकी पीड़ासे कातर रहेंगे । संन्यासी लोग अन्न-प्राप्तिके उद्देश्यसे ही लोगोंको शिष्य बनाते फिरेंगे । स्त्रियाँ दोनों ही हाथोंसे सिर खुजलाती हुई अपने पति तथा गुरुजनोंकी हितभरी आज्ञाओंका तिरस्कार करेंगी । द्विजातिलोग ज्यों-ज्यों यज्ञ और हवन आदि कर्म छोड़ते जायँगे, त्यों-ही-त्यों बुद्धिमानोंको कलियुगकी वृद्धिका अनुमान करना चाहिये । उस समय सम्पूर्ण धर्मोंके नष्ट हो जानेसे यह सारा जगत् श्रीहीन हो जायगा ॥ ४४–४९½ ॥

सूत उवाच

एवं कलेः स्वरूपं तत्कथितं विप्रसत्तमाः ॥५०॥
हरिभक्तिपरानेव न कलिर्बाधते द्विजाः ।
तपः परं कृतयुगे त्रेतायां ध्यानमेव हि ॥५१॥
द्वापरे यज्ञमेवाहुर्दानमेकं कलौ युगे ।
यतते दशभिर्वर्षैस्त्रेतायां हायनेन तत् ॥५२॥
द्वापरे तच्च मासेन अहोरात्रेण तत्कलौ ।
ध्यायन् कृते यजन् यज्ञैस्त्रेतायां द्वापरेऽर्चयन् ॥५३॥
यदाप्नोति तदाप्नोति कलौ संकीर्त्य केशवम् ।
समस्तजगदाधारं परमार्थस्वरूपिणम् ॥५४॥
घोरे कलियुगे प्राप्ते विष्णुं ध्यायन्न सीदति ।
अहोऽतीव महाभाग्याः सकृद्ये केशवार्चकाः ॥५५॥

सूतजी कहते हैं—विप्रवरो ! इस प्रकार मैंने आपलोगोंसे कलियुगके स्वरूपका वर्णन किया । द्विजगण ! जो लोग भगवान्‌के भजनमें तत्पर रहेंगे, उन्हींको कलियुग बाधा नहीं दे सकता । सत्ययुगमें तपस्या प्रधान है और त्रेतामें ध्यान । द्वापरमें यज्ञको महान् बताया गया है और कलियुगमें एकमात्र दानको । सत्ययुगमें दस वर्षोंतक तप आदिके लिये प्रयत्न करनेसे जो फल मिलता है, वही त्रेतायुगमें एक ही वर्षके प्रयत्नसे सिद्ध होता है, द्वापरमें एक ही मासकी साधनासे सुलभ होता है और कलियुगमें केवल एक दिन-रात यत्न करनेसे प्राप्त हो जाता है । सत्ययुगमें ध्यान, त्रेतामें यज्ञोंद्वारा यजन और द्वापरमें पूजन करनेसे जो फल मिलता

है, उसे ही कलियुगमें केवल भगवान्‌का कीर्तन करनेसे मनुष्य प्राप्त कर लेता है। घोर कलियुग प्राप्त होनेपर समस्त जगत्‌के आधारभूत परमार्थस्वरूप भगवान् विष्णुका ध्यान करनेवाले मनुष्यको कलिसे बाधा नहीं पहुँचती। अहो! जिन्होंने एक बार भी भगवान् विष्णुका पूजन किया है, वे बड़े सौभाग्यशाली हैं॥ ५०-५५॥

घोरे कलियुगे प्राप्ते सर्वकर्मबहिष्कृते।
न्यूनातिरिक्तता न स्यात्कलौ वेदोक्तकर्मणाम्॥५६॥
हरिस्मरणमेवात्र सम्पूर्णफलदायकम्।
हरे केशव गोविन्द वासुदेव जगन्मय॥५७॥
जनार्दन जगद्धाम पीताम्बरधराच्युत।
इतीरयन्ति ये नित्यं न हि तान् बाधते कलिः॥५८॥
अहो हरिपरा ये तु कलौ सर्वभयंकरे।
ते सभाग्या महात्मानस्तत्संगतिरता अपि॥५९॥
हरिनामपरा ये च हरिकीर्त्तनतत्पराः।
हरिपूजारता ये च ते कृतार्था न संशयः॥६०॥
इत्येतद्वः समाख्यातं सर्वदुःखनिवारणम्।
समस्तपुण्यफलदं कलौ विष्णोः प्रकीर्त्तनम्॥६१॥

इति श्रीनरसिंहपुराणे कलिलक्षणकीर्त्तनं नाम चतुःपञ्चाशोऽध्यायः॥ ५४॥

सम्पूर्ण कर्मोंका बहिष्कार करनेवाले कलियुगके प्राप्त होनेपर किये जानेवाले वेदोक्त कर्मोंमें न्यूनता या अधिकताका दोष नहीं होता। उसमें भगवान्‌का स्मरण ही पूर्ण फलदायक होता है। जो लोग हरे, केशव, गोविन्द, वासुदेव, जगन्मय, जनार्दन, जगद्धाम, पीताम्बरधर, अच्युत इत्यादि नामोंका उच्चारण करते रहते हैं, उन्हें कलियुग कभी बाधा नहीं पहुँचाता। अहो! सबको भय देनेवाले इस कलिकालमें जो लोग भगवान् विष्णुकी आराधनामें लगे रहते हैं, अथवा जो उनके आराधकोंका सङ्ग ही करते हैं, वे महात्माजन बड़े ही भाग्यशाली हैं। जो हरिनामका जप करते हैं, हरिकीर्तनमें लगे रहते हैं और सदा हरिकी पूजा ही किया करते हैं, वे मनुष्य कृतकृत्य हो गये हैं—इसमें संदेह नहीं है। इस प्रकार यह कलिका वृत्तान्त मैंने तुमसे कहा। कलियुगमें भगवान् विष्णुका नामकीर्तन समस्त दुःखोंको दूर करनेवाला और सम्पूर्ण पुण्यफलोंको देनेवाला है॥५६-६१॥

इस प्रकार श्रीनरसिंहपुराणमें 'कलियुगके लक्षणोंका वर्णन' नामक चौवनवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ५४॥

पचपनवाँ अध्याय

शुक्राचार्यको भगवान्‌की स्तुतिसे पुनः नेत्रकी प्राप्ति

राजोवाच

मार्कण्डेय कथं शुक्रः पुरा बलिमखे गुरुः।
वामनेन स विद्धाक्षः स्तुत्वा तल्लब्धवान् कथम्॥१॥

राजा बोले—मार्कण्डेयजी! पूर्वकालमें राजा बलिके यज्ञमें भगवान् वामनने जो दैत्यगुरु शुक्राचार्यकी आँख छेद डाली थी, उसे उन्होंने पुनः भगवान्‌की स्तुतिद्वारा किस प्रकार प्राप्त किया?॥ १॥

मार्कण्डेय उवाच

वामनेन स विद्धाक्षो बहुतीर्थेषु भार्गवः।
जाह्नवीसलिले स्थित्वा देवमभ्यर्च्य वामनम्॥ २॥
ऊर्ध्वबाहुः स देवेशं शङ्खचक्रगदाधरम्।
हृदि संचिन्त्य तुष्टाव नरसिंहं सनातनम्॥ ३॥

मार्कण्डेयजी बोले—वामनजीके द्वारा जब आँख छेद दी गयी, तब भृगुनन्दन शुक्राचार्यजीने बहुत तीर्थोंमें भ्रमण किया। फिर एक जगह गङ्गाजीके जलमें खड़े हो भगवान् वामनकी पूजा की और अपनी बाँहें ऊपर उठाकर शङ्ख-चक्र-गदाधारी सनातन देवेश्वर भगवान् नरसिंहका मन-ही-मन ध्यान करते हुए वे उनकी स्तुति करने लगे॥ २-३॥

शुक्र उवाच

नमामि देवं विश्वेशं वामनं विष्णुरूपिणम्।
बलिदर्पहरं शान्तं शाश्वतं पुरुषोत्तमम्॥ ४॥
धीरं शूरं महादेवं शङ्खचक्रगदाधरम्।
विशुद्धं ज्ञानसम्पन्नं नमामि हरिमच्युतम्॥ ५॥
सर्वशक्तिमयं देवं सर्वगं सर्वभावनम्।
अनादिमजरं नित्यं नमामि गरुडध्वजम्॥ ६॥

सुरासुरैर्भक्तिमद्भिः स्तुतो नारायणः सदा ।
पूजितं च हृषीकेशं तं नमामि जगद्गुरुम् ॥ ७ ॥
हृदि संकल्प्य यद्रूपं ध्यायन्ति यतयः सदा ।
ज्योतीरूपमनौपम्यं नरसिंहं नमाम्यहम् ॥ ८ ॥
न जानन्ति परं रूपं ब्रह्माद्या देवतागणाः ।
यस्यावताररूपाणि समर्चन्ति नमामि तम् ॥ ९ ॥
एतत्समस्तं येनादौ सृष्टं दुष्टवधात्पुनः ।
त्रातं यत्र जगल्लीनं तं नमामि जनार्दनम् ॥१०॥
भक्तैरभ्यर्चितो यस्तु नित्यं भक्तप्रियो हि यः ।
तं देवममलं दिव्यं प्रणमामि जगत्पतिम् ॥११॥
दुर्लभं चापि भक्तानां यः प्रयच्छति तोषितः ।
तं सर्वसाक्षिणं विष्णुं प्रणमामि सनातनम् ॥१२॥

शुक्राचार्यजी बोले—मैं सम्पूर्ण विश्वके स्वामी और श्रीविष्णुके अवतार उन देवदेव वामनजीको नमस्कार करता हूँ, जो बलिका अभिमान चूर्ण करनेवाले, परम शान्त, सनातन पुरुषोत्तम हैं। जो धीर हैं, शूर हैं, सबसे बड़े देवता हैं, शङ्ख, चक्र और गदा धारण करनेवाले हैं, उन विशुद्ध एवं ज्ञान-सम्पन्न भगवान् अच्युतको मैं नमस्कार करता हूँ। जो सर्व-शक्तिमान्, सर्वव्यापक और सबको उत्पन्न करनेवाले हैं, उन जरारहित, अनादिदेव भगवान् गरुडध्वजको मैं प्रणाम करता हूँ। देवता और असुर सदा ही जिन नारायणकी भक्तिपूर्वक स्तुति किया करते हैं, उन सर्वपूजित जगद्गुरु भगवान् हृषी-केशको मैं नमस्कार करता हूँ। यतिजन अपने अन्तःकरणमें भावनाद्वारा स्थापित करके जिनके स्वरूपका सदा ध्यान करते रहते हैं, उन अतुलनीय एवं ज्योतिर्मय भगवान् नृसिंहको मैं प्रणाम करता हूँ। ब्रह्मा आदि देवतागण जिनके परमार्थ स्वरूप-को भलीभाँति नहीं जानते, अतः जिनके अवतार-रूपोंका ही वे सदा पूजन किया करते हैं, उन भगवान्‌को मैं नमस्कार करता हूँ। जिन्होंने प्रथम इस सम्पूर्ण जगत्‌की सृष्टि की थी, फिर जिन्होंने दुष्टोंका वध करके इसकी रक्षा की है तथा जिनमें ही यह सारा जगत् लीन हो जाता है, उन भगवान् जनार्दनको मैं प्रणाम करता हूँ। भक्तजन जिनका सदा अर्चन करते हैं तथा जो भक्तोंके प्रेमी हैं, उन परम निर्मल, दिव्य कान्तिमय जगदीश्वरको मैं नमस्कार करता हूँ। जो प्रसन्न होनेपर अपने भक्तोंको दुर्लभ वस्तु भी प्रदान करते हैं, उन सर्वसाक्षी सनातन विष्णुभगवान्‌को मैं प्रणाम करता हूँ ॥४-१२॥

श्रीमार्कण्डेय उवाच

इति स्तुतो जगन्नाथः पुरा शुक्रेण पार्थिव ।
प्रादुर्बभूव तस्याग्रे शङ्खचक्रगदाधरः ॥१३॥
उवाच शुक्रमेकाक्षं देवो नारायणस्तदा ।
किमर्थं जाह्नवीतीरे स्तुतोऽहं तद्ब्रवीहि मे ॥१४॥

श्रीमार्कण्डेयजी कहते हैं—राजन्! पूर्वकालमें शुक्राचार्यजीके द्वारा इस प्रकार स्तुति की जानेपर शङ्ख-चक्र-गदाधारी भगवान् जगन्नाथ उनके समक्ष प्रकट हो गये। उस समय भगवान् नारायणने एक आँखवाले शुक्राचार्यजीसे कहा—'ब्रह्मन्! तुमने गङ्गातटपर किसलिये मेरा स्तवन किया है? यह मुझसे बताओ' ॥ १३-१४ ॥

शुक्र उवाच

देवदेव मया पूर्वमपराधो महान् कृतः ।
तद्दोषस्यापनुत्त्यर्थं स्तुतवानस्मि साम्प्रतम् ॥१५॥

शुक्राचार्यजी बोले—देवदेव! मैंने पहले (बलिके यज्ञमें) आपका बहुत बड़ा अपराध किया है; उसी दोषको दूर करनेके लिये इस समय आपका स्तवन किया है ॥ १५ ॥

श्रीभगवानुवाच

ममापराधान्नयनं नष्टमेकं तवाधुना ।
संतुष्टोऽस्मि ततः शुक्र स्तोत्रेणानेन ते मुने ॥१६॥

श्रीभगवान् बोले—मुने! मेरे प्रति किये गये अपराधसे ही तुम्हारा एक नेत्र नष्ट हो गया था। शुक्र! इस समय तुम्हारे इस स्तवनसे मैं तुमपर संतुष्ट हूँ ॥ १६ ॥

इत्युक्त्वा देवदेवेशस्तं मुनिं प्रहसन्निव ।
पाञ्चजन्येन तच्चक्षुः पस्पर्श च जनार्दनः ॥१७॥
स्पृष्टमात्रे तु शङ्खेन देवदेवेन शार्ङ्गिणा ।
बभूव निर्मलं चक्षुः पूर्ववन्नृपसत्तम ॥१८॥
एवं दत्त्वा मुनेश्चक्षुः पूजितस्तेन माधवः ।
जगामादर्शनं सद्यः शुक्रोऽपि स्वाश्रमं ययौ ॥१९॥
इत्येतदुक्तं मुनिना महात्मना
प्राप्तं पुरा देववरप्रसादात् ।
शुक्रेण किं ते कथयामि राजन्
पुनश्च मां पृच्छ मनोरथान्तः ॥२०॥

इति श्रीनरसिंहपुराणे शुक्रवरप्रदानो नाम
पञ्चपञ्चाशोऽध्यायः ॥ ५५ ॥

यह कहकर देवदेवेश्वर जनार्दनने हँसते हुए-से अपने पाञ्चजन्य शङ्खसे शुक्राचार्यके फूटे हुए नेत्रका स्पर्श किया। नृपश्रेष्ठ! शार्ङ्गधन्वा देवदेव विष्णुके द्वारा शङ्खका स्पर्श कराये जाते ही शुक्राचार्यका वह नेत्र पहलेकी भाँति ही निर्मल हो गया। इस प्रकार शुक्राचार्यको नेत्र देकर और उनसे पूजित होकर भगवान् लक्ष्मीपति तुरंत अन्तर्धान हो गये और शुक्राचार्य भी अपने आश्रमको चले गये। राजन्! इस प्रकार पूर्वकालमें मुनिवर महात्मा शुक्राचार्यने देवेश्वर भगवान् विष्णुकी कृपासे अपना नेत्र प्राप्त कर लिया—यह प्रसङ्ग तुम्हारे प्रश्नानुसार मैंने सुना दिया। अब तुम्हें मैं और क्या सुनाऊँ? तुम्हारे मनमें और भी यदि कुछ पूछनेकी इच्छा हो तो मुझसे प्रश्न करो॥ १७–२०॥

इस प्रकार श्रीनरसिंहपुराणमें 'शुक्राचार्यको वरप्रदान' नामक पचपनवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ५५॥
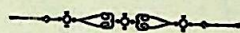
छप्पनवाँ अध्याय

विष्णुमूर्तिके स्थापनकी विधि

राजोवाच

साम्प्रतं देवदेवस्य नरसिंहस्य शार्ङ्गिणः।
श्रोतुमिच्छामि सकलं प्रतिष्ठायाः परं विधिम्॥ १॥

राजा बोले—ब्रह्मन्! अब मैं शार्ङ्गधनुषधारी देवदेव नरसिंहके स्थापनकी समस्त उत्तम विधिको सुनना चाहता हूँ॥ १॥

श्रीमार्कण्डेय उवाच

प्रतिष्ठाया विधिं विष्णोर्देवदेवस्य चक्रिणः।
प्रवक्ष्यामि यथाशास्त्रं शृणु भूपाल पुण्यदम्॥ २॥
कर्तुं प्रतिष्ठां यश्चात्र विष्णोरिच्छति पार्थिव।
स पूर्वं स्थिरनक्षत्रे भूमिशोधनमारभेत्॥ ३॥
खात्वा पुरुषमात्रं तु बाहुद्वयमथापि वा।
पूरयेच्छुद्धमृद्भिस्तु जलाक्तैः शर्करान्वितैः॥ ४॥
अधिष्ठानं ततो बुद्ध्वा पाषाणेष्टकमृण्मयम्।
प्रासादं कारयेत्तत्र वास्तुविद्याविदा नृप॥ ५॥
चतुरस्रं सूत्रमार्गे चतुःकोणं समन्ततः।
शिलाभित्तिकमुत्कृष्टं तदलाभेष्टकामयम्॥ ६॥
तदलाभे तु मृत्कुड्यं पूर्वद्वारं सुशोभनम्।
जातिकाष्ठमयैः स्तम्भैस्तल्लग्नैः फलदान्वितैः॥ ७॥
उत्पलैः पद्मपत्रैश्च पातितैश्चित्रशिल्पिभिः।

श्रीमार्कण्डेयजी बोले—भूपाल! देवदेवेश्वर चक्रपाणि भगवान् विष्णुके स्थापनकी पुण्यदायिनी विधि सुनो; मैं शास्त्रके अनुसार उसका वर्णन कर रहा हूँ। पृथिवीपते! जो भी इस लोकमें भगवान् विष्णुकी स्थापना करना चाहे, उसको चाहिये कि वह पहले स्थिर-संज्ञक* नक्षत्रोंमें भूमिशोधनका कार्य प्रारम्भ करे। एक पुरुषके बराबर अर्थात् साढ़े तीन हाथ अथवा दो हाथ नीचेतक नींव खोदकर उसमें जलसे भीगी हुई कंकड़ और बालूसहित शुद्ध मिट्टी भर दे। राजन्! फिर उसे ही आधार समझकर उसके ऊपर अपनी शक्तिके अनुसार पत्थर, ईंट अथवा मिट्टीसे गृहनिर्माण-विद्यामें कुशल कारीगरोंके द्वारा मन्दिर तैयार कराये। वह मन्दिर चारों ओरसे बराबर और चौकोर हो। उसकी दीवार पत्थरकी हो तो बहुत उत्तम; पत्थर न मिलनेपर ईंटोंकी ही दीवार बनवा ले। यदि ईंटें भी न मिल सकें तो मिट्टीकी ही भींत उठा ले। मन्दिर बहुत ही सुन्दर हो और उसका दरवाजा पूर्वकी ओर होना चाहिये। उस मन्दिरमें अच्छी जातिवाले काठके खंभे लगे हों और उनमें चित्रकला जाननेवाले शिल्पियोंके द्वारा फलयुक्त वृक्ष, कुमुद तथा कमलदल चित्रित कराने चाहिये॥ २–७½॥

इत्थं तु कारयित्वा हि हरेर्वेश्म सुशोभनम्॥ ८॥
पूर्वद्वारं नृपश्रेष्ठ सुकपाटं सुचित्रितम्।
अतिवृद्धातिबालैस्तु कारयेन्नाकृतिं हरेः॥ ९॥
कुष्ठाद्युपहतैर्वापि अन्यैर्वा दीर्घरोगिभिः।
विश्वकर्मोक्तमार्गेण पुराणोक्तां नृपोत्तम॥ १०॥
कारयेत्प्रतिमां दिव्यां पुष्टाङ्गेन तु धीमता।
सौम्याननां सुश्रवणां सुनासां च सुलोचनाम्॥ ११॥

* तीनों उत्तरा और रोहिणी—ये 'स्थिर' नक्षत्र कहलाते हैं।

नाधोदृष्टिं नोर्ध्वदृष्टिं तिर्यग्दृष्टिं न कारयेत् ।
कारयेत् समदृष्टिं तु पद्मपत्रायतेक्षणाम् ॥१२॥
सुभ्रुवं सुललाटां च सुकपोलां समां शुभाम् ।
बिम्बोष्ठीं सुष्ठुचिबुकां सुग्रीवां कारयेद्बुधः ॥१३॥
उपबाहुकरे देयं दक्षिणे चक्रमर्कवत् ।
नाभिसंलग्नदिव्यारं परितो नेमिसंयुतम् ॥१४॥
वामपार्श्वेत्युपभुजे देयं शङ्खं शशिप्रभम् ।
पाञ्चजन्यमिति ख्यातं दैत्यदर्पहरं शुभम् ॥१५॥

नृपश्रेष्ठ ! इस प्रकार जिसमें सुन्दर किवाड़ लगे हों और जिसका द्वार पूर्व दिशाकी ओर हो—ऐसा बेल-बूटोंसे भलीभाँति चित्रित भगवान्‌का परम सुहावना मन्दिर बनवाकर बुद्धिमान् एवं हृष्टपुष्ट शरीरवाले पुरुषके द्वारा विश्वकर्माकी बतायी हुई पद्धतिके अनुसार पुराणोक्त दिव्य प्रतिमाका निर्माण कराये । जो कारीगर अत्यन्त बूढ़ा या बालक अथवा कोढ़ आदि रोगोंसे दूषित या पुराना रोगी हो, उससे भगवत्प्रतिमाका निर्माण नहीं कराना चाहिये । प्रतिमाका मुख सौम्य (प्रसन्न) तथा कान, नाक और नेत्र आदि अङ्ग सुढार होने चाहिये । उसकी दृष्टि न तो बहुत नीची हो, न बहुत ऊँची हो और न तिरछी ही हो । विद्वान् पुरुष ऐसी प्रतिमा बनवाये, जिसकी दृष्टि सम हो और जिसके नेत्र कमलदलके समान विशाल हों । भौंहें, ललाट और कपोल सुन्दर हों, उसका समस्त विग्रह सुडौल और सौम्य हो । उसके दोनों ओठ लाल हों, ठोढ़ी (अधरके नीचेका भाग) मनोहर तथा कण्ठ सुन्दर हो । प्रतिमाकी भुजाएँ चार होनी चाहिये--दो भुजाएँ और दो उपभुजाएँ । उनमेंसे दाहिनी उपभुजाके हाथमें सूर्यके समान आकारवाला चक्र धारण कराना चाहिये । चक्रकी नाभिके चारों ओर दिव्य अरे हों और उनके भी ऊपर सब ओरसे नेमि (हाल) लगी हो । बायीं उपभुजाके हाथमें चन्द्रमाके समान श्वेत कान्तिमय पाञ्चजन्य नामक शङ्ख देना चाहिये, जो दैत्योंके मदको चूर्ण करनेवाला और कल्याणप्रद है ॥ ८–१५ ॥

हारार्पितवरां दिव्यां कण्ठे त्रिवलिसंयुताम् ।
सुस्तनीं चारुहृदयां सुजठरां समां शुभाम् ॥१६॥
कटिलग्नवामकरां पद्मलग्नां च दक्षिणाम् ।
केयूरबाहुकां दिव्यां सुनाभिवलिभङ्गिकाम् ॥१७॥
मुकटीं च सुजङ्घोरूं वस्त्रमेखलभूषिताम् ।
एवं तां कारयित्वा तु प्रतिमां राजसत्तम ॥१८॥
सुवर्णवस्त्रदानेन तत्कर्तॄन् पूज्य सत्तम ।
पूर्वपक्षे शुभे काले प्रतिमां स्थापयेद्बुधः ॥१९॥

उस दिव्य भगवत्प्रतिमाके कण्ठमें सुन्दर हार पहनाया गया हो, गलेमें त्रिवली-चिह्न हो, स्तनभाग सुन्दर, वक्षःस्थल रुचिर और उदर मनोहर होना चाहिये । सम्पूर्ण अङ्ग बराबर और सुन्दर हों । वह प्रतिमा अपना बायाँ हाथ कमरपर रक्खे हो और दाहिनेमें कमल धारण किये हो । बाहुओंमें भुजबन्ध पहने हो और सुन्दर नाभि तथा त्रिवलीसे सुशोभित एवं दिव्य जान पड़ती हो । उसका कटिभाग (नितम्ब), जाँघें और पिंडलियाँ मनोहर हों, वह कमरमें मेखला और पीतवस्त्रसे विभूषित हो । नृपश्रेष्ठ ! इस प्रकार भगवत्प्रतिमाका निर्माण कराकर उसके बनानेवाले शिल्पियोंको सुवर्ण-दान एवं वस्त्र-दानके द्वारा सम्मानित करके विद्वान् पुरुष पूर्व पक्षमें शुभ समयपर उस प्रतिमाकी स्थापना करे ॥ १६–१९ ॥

प्रासादस्याग्रतः कृत्वा यागमण्डपमुत्तमम् ।
चतुर्द्वारं चतुर्दिक्षु चतुर्भिस्तोरणैर्युतम् ॥२०॥
सप्तधान्याङ्कुरैर्युक्तं शङ्खभेरीनिनादितम् ।
प्रतिमां क्षाल्य विद्वद्भिः षट्त्रिंशद्भिर्घटोदकैः ॥२१॥
प्रविश्य मण्डपे तस्मिन् ब्राह्मणैर्वेदपारगैः ।
तत्रापि स्नापयेत्पश्चात् पञ्चगव्यैः पृथक् पृथक् ॥२२॥
तथोष्णवारिणा स्नाप्य पुनः शीतोदकेन च ।
हरिद्राकुङ्कुमाद्यैस्तु चन्दनैश्चोपलेपयेत् ॥२३॥
पुष्पमाल्यैरलंकृत्य वस्त्रैराच्छाद्य तां पुनः ।
पुण्याहं तत्र कृत्वा तु त्र्यब्भिस्तां प्रोक्ष्य वारिभिः ॥२४॥
स्नात्वा तां ब्राह्मणैर्भक्तैः शङ्खभेरीस्वनैर्युतम् ।
वासयेत्सप्तरात्रं तु त्रिरात्रं वा नदीजले ॥२५॥
ह्रदे तु विमले शुद्धे तडागे वापि रक्षयेत् ।
अधिवास्य जले देवमेवं पार्थिवपुंगव ॥२६॥
तत उत्थाप्य विप्रैस्तु स्थाप्यालंकृत्य पूर्ववत् ।
ततो भेरीनिनादैस्तु वेदघोषैश्च केशवम् ॥२७॥
आनीय मण्डपे शुद्धे पञ्चाकारविनिर्मिते ।
कृत्वा पुनस्ततः स्नाप्य विष्णुभक्तैरलंक्रियात् ॥२८॥

मन्दिरके सामने एक उत्तम यज्ञमण्डप बनवाये । उसमें

चारों ओर एक-एकके क्रमसे चार दरवाजे हों और सारा मण्डप चार तोरणों (बड़े-बड़े फाटकों) से घिरा हो । उसमें सप्तधान्यके अङ्कुर उगे हों तथा शङ्ख और भेरी आदि बाजे बजते हों । विद्वानोंके द्वारा छत्तीस घड़े जलसे उस प्रतिमाका अभिषेक कराकर उसके साथ वेदोंके पारगामी ब्राह्मणोंको साथमें लिये उक्त मण्डपमें प्रवेश करे और फिर पञ्चगव्योंसे पृथक्-पृथक् स्नान कराये । इसी प्रकार गर्म जलसे नहलाकर फिर ठंढे जलसे स्नान कराये । तत्पश्चात् हल्दी और कुङ्कुम आदि-का तथा चन्दनोंका उसपर लेप करे, फिर फूलोंकी मालाओंसे विभूषितकर उसे वस्त्र धारण करा दे और पुण्याहवाचन करके वैदिक ऋचाओंके उच्चारणपूर्वक जलसे प्रोक्षितकर भक्त ब्राह्मणों-द्वारा उस भगवद्विग्रहको नहलाये । तत्पश्चात् शङ्ख, भेरी आदि बाजे बजाते हुए उसे नदीके जलमें रखकर सात या तीन दिनोंतक उसे वहाँ रहने दे । अथवा किसी निर्मल जलाशय या शुद्ध सरोवरमें ही रखकर उसकी रक्षा करे । नृपश्रेष्ठ ! इस प्रकार भगवान्का जलाधिवास कराके ब्राह्मणोंद्वारा उनको उठवाये और पालकी आदिमें चढ़ाकर पूर्ववत् उन्हें माला आदिसे विभूषित करे । तदनन्तर नगारोंकी ध्वनि और वेद-मन्त्रोंके गम्भीर घोषके साथ भगवान्को वहाँसे ले आये और कमलाकार बने हुए शुद्ध मण्डपमें रक्खे । वहाँ पुनः स्नान कराके विष्णुभक्तोंद्वारा उसका श्रृङ्गार कराये ॥ २०—२८ ॥

ब्राह्मणान् भोजयित्वा तु विधिवत् षोडशर्त्विजः ।
चतुर्भिरध्ययनं कार्यं चतुर्भिः पालनं तथा ॥२९॥
चतुर्भिस्तु चतुर्दिक्षु होमः कार्यो विचक्षणैः ।
पुष्पाक्षतान्नमिश्रेण दद्याद्दिक्षु बलीन् नृप ॥३०॥
एकेन दापयेत्तेषामिन्द्राद्याः प्रीयन्तामिति ।
प्रत्येकं सायंसंध्यायां मध्यरात्रे तथोषसि ॥३१॥
उदिते च ततो दद्यान्मातृविप्रगणाय वा ।
जपन् पुरुषसूक्तं तु एकतस्तु पुनः पुनः ॥३२॥
एकतो मनसा राजन् विष्णोर्मन्दिरमध्यगः ।
अहोरात्रोषितो भूत्वा यजमानो द्विजैः सह ॥३३॥
प्रविश्य प्रतिमाद्वारं शुभलग्ने विचक्षणः ।
देवसूक्तं द्विजैः सार्धमुपस्थाप्य च तां दृढम् ॥३४॥
संस्थाप्य विष्णुसूक्तेन पवमानेन वा पुनः ।
प्रोक्षयेद्देवदेवेशमाचार्यः कुशवारिणा ॥३५॥

इसके बाद सोलह ऋत्विज ब्राह्मणोंको विधिपूर्वक भोजन कराये । उनमेंसे चार ब्राह्मणोंको तो वहाँ वेद-पुराणादिका स्वाध्याय (पाठ) करना चाहिये, चार विप्रोंको उस भगवद्विग्रहकी रक्षामें संलग्न रहना चाहिये तथा चार विद्वानोंको यज्ञमण्डपके भीतर चारों दिशाओंमें हवन करना चाहिये । राजन् ! फिर एक ब्राह्मणके द्वारा फूल, अक्षत और अन्नसे समस्त दिशाओंमें बलि अर्पित कराये । यह बलि इन्द्रादि देवताओंकी प्रसन्नताके लिये होती है । प्रत्येक दिशाके अधिपतिको 'इन्द्रः प्रीयताम्' इत्यादि रूपसे उसके नामोच्चारणपूर्वक ही बलि दे । सायंकाल, आधी रात, उषःकाल तथा सूर्योदयके समय प्रत्येक दिक्पालको बलि अर्पित करनी चाहिये । इसके बाद मातृकागणोंको बलि और ब्राह्मणोंको उपहार दे । राजन् ! इसके पश्चात् यजमानको चाहिये कि भगवान् विष्णुके मन्दिरमें एक ओर बैठकर एकाग्रचित्तसे बार-बार पुरुषसूक्तका जप करे । फिर पूरे एक दिन-रात उपवास करके शुभ लग्नमें वह बुद्धिमान् पुरुष ब्राह्मणोंको साथ ले मण्डपमें, जहाँ प्रतिमा रक्खी गयी हो, उस द्वारसे मण्डपके भीतर प्रवेश करे और ब्राह्मणोंके साथ देवसूक्तका पाठ करते हुए भगवत्प्रतिमाका उपस्थान करके उसे मन्दिरमें लाये और विष्णुसूक्त अथवा पवमानसूक्तका पाठ करते हुए उसे वहाँ दृढ़तापूर्वक स्थापित करे । तत्पश्चात् आचार्य कुशयुक्त जलसे उन देवदेवेश्वर भगवान्का अभिषेक करे ॥२९—३५॥

तदग्रे चाग्निमाधाय सम्परिस्तीर्य यत्नतः ।
जुहुयाज्जातकर्मादि गायत्र्या वैष्णवेन तु ॥३६॥
चतुर्भिराज्याहुतिभिरेकैकां क्रियां प्रति ।
आचार्यस्तु स्वयं कुर्यादस्त्रैर्बन्धं च कारयेत् ॥३७॥
त्रातारमिति चैन्द्र्यां तु कुर्यादाज्यप्रणुन्नकम् ।
परोदिवेति याम्यायां वारुण्यां निषसेति च ॥३८॥
या ते रुद्रेति सौम्यां तु हुवेदाज्याहुतीर्नृप ।
परोमात्रेति सूक्ताभ्यां सर्वत्राज्याहुतीर्नृप ॥३९॥
हुत्वा जपेच्च विधिवद्यदस्येति च स्विष्टकृत् ।
ततः स दक्षिणां दद्यादृत्विग्भ्यश्च यथार्हतः ॥४०॥
वस्त्रे द्वे कुण्डले चैव गुरवे चाङ्गुलीयकम् ।
यजमानस्ततो दद्याद्विभवे सति काञ्चनम् ॥४१॥

फिर भगवान्के सम्मुख अग्निस्थापन करे । अग्निके चारों

और यत्नपूर्वक कुशास्तरण करके गायत्री और विष्णुमन्त्रोंद्वारा जातकर्मादि संस्कारकी सिद्धिके निमित्त हवन करे। आचार्यको चाहिये कि प्रत्येक क्रियामें चार-चार बार घीकी आहुति दे तथा अस्त्रमन्त्र (अस्त्राय फट्) बोलकर दिग्बन्ध कराये। 'ॐ त्रातारमिन्द्रम्०' इत्यादि मन्त्र (शु० यजु० २० । ५०) से अग्निवेदीपर पूर्वकी ओर घीकी आहुति दे। 'परो दिवा०' इत्यादि मन्त्र (शु० यजु० १७ । २९) से दक्षिण दिशामें और 'निषसाद०' इत्यादि मन्त्र (शु० यजु० १० । २७) से पश्चिममें घृतका हवन करे। हे नृप ! 'या ते रुद्र०' (शु० यजु० १६ । २)—इस मन्त्रसे उत्तर दिशामें और 'परो मात्रया०' (ऋग्वेद ७ । ६ । ९९) इत्यादि दो सूक्तोंद्वारा सम्पूर्ण दिशाओंमें घीकी आहुति दे। इस प्रकार विधिवत् हवन करके 'यदस्या०' (शु० यजु० २३ । २८) इस मन्त्रका जप करे और घीसे 'स्विष्टकृत्' संज्ञक होम करे। तदनन्तर ऋत्विजोंको उनके सम्मानके अनुकूल सादर दक्षिणा दे। इसके बाद यजमान आचार्यको दो वस्त्र, दो सुवर्णमय कुण्डल और सोनेकी अँगूठी दे तथा यदि सामर्थ्य हो तो इसके अतिरिक्त भी सुवर्णदान करे ॥ ३६–४१ ॥

कलशाष्टसहस्रेण कलशाष्टशतेन वा ।
एकविंशतिना वापि स्नपनं कारयेद् बुधः ॥४२॥
शङ्खदुन्दुभिनिर्घोषैर्वेदघोषैश्च मङ्गलैः ।
यवव्रीहियुतैः पात्रैरुद्भूतैरुच्छ्रिताङ्कुरैः ॥४३॥
दीपयष्टिपताकाभिश्छत्रचामरतोरणैः ।
स्नपनं कारयित्वा तु यथाविभवविस्तरम् ॥४४॥
तत्रापि दद्याद्विप्रेभ्यो यथाशक्त्या तु दक्षिणाम् ।
एवं यः कुरुते राजन् प्रतिष्ठां देवचक्रिणः ॥४५॥
सर्वपापविनिर्मुक्तः सर्वभूषणभूषितः ।
विमानेन विचित्रेण त्रिःसप्तकुलजैर्वृतः ॥४६॥
पूजां सम्प्राप्य महतीमिन्द्रलोकादिषु क्रमात् ।
बान्धवांस्तेषु संस्थाप्य विष्णुलोके महीयते ॥४७॥
तत्रैव ज्ञानमासाद्य वैष्णवं पदमाप्नुयात् ।

फिर विद्वान् पुरुष यथासम्भव एक हजार आठ या एक सौ आठ अथवा इक्कीस घड़े जलसे भगवान्को स्नान कराये। उस समय शङ्ख और दुन्दुभि आदि बाजे बजते रहें, वेद-मन्त्रोंका घोष और मङ्गलपाठ होता रहे । अपनी शक्तिके अनुसार जिनपर जौ आदिके अङ्कुर निकले हों, ऐसे जौ और व्रीहि (चावल) से भरे पात्रोंद्वारा तथा दीप, यष्टि (छड़ी), पताका, छत्र, चँवर, तोरण आदि सामग्रियोंके साथ स्नान-विधि पूर्ण कराके वहाँ भी ब्राह्मणोंको यथाशक्ति दक्षिणा दे। राजन् ! इस प्रकार जो भगवान् विष्णुकी प्रतिष्ठा करता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो जाता है और मृत्युके पश्चात् अपने-सहित इक्कीस पीढ़ीके पितरोंको साथ ले, सब प्रकारके आभूषणोंसे भूषित एवं विचित्र विमानपर आरूढ हो, क्रमशः इन्द्रादि लोकोंमें विशेष सम्मान प्राप्त करता है तथा अपने बन्धुजनोंको उन लोकोंमें रखकर स्वयं विष्णुलोकमें जाकर प्रतिष्ठित होता है। फिर वहाँ ही भगवत्तत्त्वका ज्ञान प्राप्तकर वह विष्णुस्वरूपमें लीन हो जाता है ॥ ४२–४७½ ॥

प्रतिष्ठाविधिरयं विष्णोर्मयैवं ते प्रकीर्तितः ॥४८॥
पठतां शृण्वतां चैव सर्वपापप्रणाशनः ॥४९॥
यदा नृसिंहं नरनाथ भूमौ
संस्थाप्य विष्णुं विधिना ह्यनेन ।
तदा ह्यसौ याति हरेः पदं तु
यत्र स्थितोऽयं न निवर्तते पुनः ॥५०॥

इति श्रीनरसिंहपुराणे प्रतिष्ठाविधिर्नाम
षट्पञ्चाशोऽध्यायः ॥ ५६ ॥

राजन् ! इस प्रकार तुमसे मैंने यह प्रतिष्ठा-विधि बतायी। इसका पाठ और श्रवण करनेवाले लोगोंके सब पाप दूर हो जाते हैं। नरनाथ ! जब मनुष्य इस पूर्वोक्त विधिसे पृथ्वीपर भगवान् नृसिंहकी स्थापना कर लेता है, तब मृत्युके बाद वह भगवान् विष्णुके उस नित्यधामको प्राप्त होता है, जहाँ रहकर वह पुनः संसारमें नहीं लौटता ॥ ४८–५० ॥

इस प्रकार श्रीनरसिंहपुराणमें 'प्रतिष्ठाविधि' नामक छप्पनवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ५६ ॥

सत्तावनवाँ अध्याय*

भक्तके लक्षण; हारीत-स्मृतिका आरम्भ; ब्राह्मणधर्मका वर्णन

राजोवाच

भक्तानां लक्षणं ब्रूहि नरसिंहस्य मे द्विज ।
येषां संगतिमात्रेण विष्णुलोको न दूरतः ॥ १ ॥

राजा बोले—ब्रह्मन् ! आप मुझसे भगवान् नृसिंहके भक्तोंका लक्षण बतलाइये, जिनका सङ्ग करनेमात्रसे विष्णुलोक दूर नहीं रह जाता ॥ १ ॥

श्रीमार्कण्डेय उवाच

विष्णुभक्ता महोत्साहा विष्ण्वर्चनविधौ सदा ।
संयता धर्मसम्पन्नाः सर्वार्थान् साधयन्ति ते ॥ २ ॥
परोपकारनिरता गुरुशुश्रूषणे रताः ।
वर्णाश्रमाचारयुताः सर्वेषां सुप्रियंवदाः ॥ ३ ॥
वेदवेदार्थतत्त्वज्ञा गतरोषा गतस्पृहाः ।
शान्ताश्च सौम्यवदना नित्यं धर्मपरायणाः ॥ ४ ॥
हितं मितं च वक्तारः काले शक्त्यातिथिप्रियाः ।
दम्भमायाविनिर्मुक्ताः कामक्रोधविवर्जिताः ॥ ५ ॥
ईदृग्विधा नरा धीराः क्षमावन्तो बहुश्रुताः ।
विष्णुकीर्तनसंजातहर्षा रोमाञ्चिता जनाः ॥ ६ ॥
विष्ण्वर्चापूजने यत्तास्तत्कथायां कृतादराः ।
ईदृग्विधा महात्मानो विष्णुभक्ताः प्रकीर्तिताः ॥ ७ ॥

श्रीमार्कण्डेयजीने कहा—राजन् ! भगवान् विष्णुके भक्त उनकी पूजा-अर्चा करनेमें महान् उत्साह रखते हैं। वे अपने मन और इन्द्रियोंको संयममें रखते हुए धर्ममें तत्पर रहकर सारे मनोरथोंको सिद्ध कर लेते हैं। भगवद्भक्त जन सदा परोपकार और गुरु-सेवामें लगे रहते हैं, सबसे मीठे वचन बोलते और अपने-अपने वर्ण तथा आश्रमके सदाचारोंका पालन करते हैं। वे वेद और वेदार्थका तत्त्व जाननेवाले होते हैं, उनमें क्रोध और कामनाओंका अभाव होता है। वे सदा शान्त रहते हैं, उनके मुखपर सौम्यभाव लक्षित होता है तथा वे निरन्तर धर्माचरणमें लगे रहते हैं। थोड़ा किंतु हितकारी वचन बोलते हैं, समयपर अपनी शक्तिके अनुसार सदा अतिथिकी सेवा करनेमें उनका प्रेम बना रहता है। वे दम्भ, कपट, काम और क्रोधसे रहित होते हैं। जो मनुष्य इन पूर्वोक्त लक्षणोंसे युक्त एवं धीर हैं, बहुश्रुत और क्षमावान् हैं तथा विष्णुभगवानके नामोंका कीर्तन अथवा श्रवण करते समय हर्षसे रोमाञ्चित हो जाते हैं, इसी तरह जो विष्णुपूजनमें तत्पर और भगवत्कथामें आदर रखनेवाले हैं, ऐसे महात्मा पुरुष भगवान् विष्णुके भक्त कहे गये हैं ॥ २-७ ॥

राजोवाच

ये वर्णाश्रमधर्मस्थास्ते भक्ताः केशवं प्रति ।
इति प्रोक्तं त्वया विद्वन् भृगुवर्य गुरो मम ॥ ८ ॥
वर्णानामाश्रमाणां च धर्मं मे वक्तुमर्हसि ।
यैः कृतैस्तुष्यते देवो नरसिंहः सनातनः ॥ ९ ॥

राजा बोले—विद्वन् ! भृगुवर्य ! मेरे गुरुदेव ! आपने अभी कहा है कि जो अपने वर्ण और आश्रमके धर्ममें लगे रहते हैं, वे भगवान् विष्णुके भक्त हैं; अतः आप कृपा करके वर्णों और आश्रमोंके धर्म बताइये, जिनके पालन करनेसे सनातन भगवान् नृसिंह संतुष्ट होते हैं ॥ ८-९ ॥

श्रीमार्कण्डेय उवाच

अत्र ते वर्णयिष्यामि पुरावृत्तमनुत्तमम् ।
मुनिभिः सह संवादं हारीतस्य महात्मनः ॥ १० ॥

श्रीमार्कण्डेयजीने कहा—इस विषयमें मुनियोंके साथ महात्मा हारीत ऋषिका संवाद हुआ था; उसी प्राचीन एवं उत्तम इतिहासका आज मैं तुम्हारे समक्ष वर्णन करूँगा ॥ १० ॥

हारीतं धर्मतत्त्वज्ञमासीनं बहुपाठकम् ।
प्रणिपत्याब्रुवन् सर्वे मुनयो धर्मकाङ्क्षिणः ॥ ११ ॥
भगवन् सर्वधर्मज्ञ सर्वधर्मप्रवर्तक ।
वर्णानामाश्रमाणां च धर्मं प्रब्रूहि शाश्वतम् ॥ १२ ॥

एक समयकी बात है, धर्मका तत्त्व जाननेकी इच्छावाले समस्त मुनियोंने एक जगह आसनपर आसीन, धर्म-तत्त्ववेत्ता एवं बहुपाठी महात्मा

* यहाँसे 'हारीत-स्मृति'का प्रारम्भ है। अधुना उपलब्ध 'लघु हारीत स्मृति'के पाठ इसके पाठसे प्रायः मिलते हैं। कुछ-कुछ पाठान्तर भी उपलब्ध होते हैं।

हारीत ऋषिके पास जाकर उन्हें प्रणाम किया और कहा—'भगवन् ! आप समस्त धर्मोंके ज्ञाता और प्रवर्तक हैं; अतः आप हमलोगोंसे वर्ण और आश्रमोंसे सम्बन्ध रखनेवाले सनातन धर्मका वर्णन कीजिये' ॥ ११-१२ ॥

हारीत उवाच

नारायणः पुरा देवो जगत्स्रष्टा जलोपरि ।
सुष्वाप भोगिपर्यङ्के शयने तु श्रिया सह ॥१३॥
तस्य सुप्तस्य नाभौ तु दिव्यं पद्ममभूत् किल ।
तन्मध्ये चाभवद्ब्रह्मा वेदवेदाङ्गभूषणः ॥१४॥
स चोक्तस्तेन देवेन ब्राह्मणान्मुखतोऽसृजत् ।
असृजत्क्षत्रियान् बाह्वोर्वैश्यांस्तु ऊरुतोऽसृजत् ॥१५॥
शूद्रास्तु पादतः सृष्टास्तेषां चैवानुपूर्वशः ।
धर्मशास्त्रं च मर्यादां प्रोवाच कमलोद्भवः ॥१६॥
तद्वत्सर्वं प्रवक्ष्यामि शृणुत द्विजसत्तमाः ।
धन्यं यशस्यमायुष्यं स्वर्गमोक्षफलप्रदम् ॥१७॥

श्रीहारीतजी बोले—पूर्वकालमें जगत्स्रष्टा भगवान् नारायण जलके ऊपर शेषनागकी शय्यापर श्रीलक्ष्मीजीके साथ शयन करते थे। कहते हैं, शयन-कालमें ही उन भगवान्की नाभिसे एक दिव्य कमल प्रकट हुआ और उस कमल-कोषमेंसे वेद-वेदाङ्गोंके ज्ञानसे विभूषित श्रीब्रह्माजी प्रकट हुए। उन ब्रह्माजीने सृष्टिके लिये भगवान् नारायणकी आज्ञा होनेपर सर्वप्रथम ब्राह्मणोंको अपने मुखसे प्रकट किया। फिर क्षत्रियोंको बाहुओंसे और वैश्योंको जाँघोंसे उत्पन्न किया। अन्तमें उन्होंने चरणोंसे शूद्रोंकी सृष्टि की। फिर कमलोद्भव ब्रह्माजीने क्रमशः उन्हीं ब्राह्मणादि वर्णोंके धर्मका उपदेश करनेवाले शास्त्र और वर्णोंकी मर्यादाका वर्णन किया। द्विजवरो ! ब्रह्माजीने जो कुछ उपदेश किया, वह सब मैं आपलोगोंसे कह रहा हूँ; आप सुनें। यह धर्मशास्त्र धन, यश और आयुको बढ़ानेवाला तथा स्वर्ग और मोक्षरूपी फलको देनेवाला है ॥ १३-१७ ॥

ब्राह्मण्यां ब्राह्मणेनैव चोत्पन्नो ब्राह्मणः स्मृतः ।
तस्य धर्मं प्रवक्ष्यामि तद्योग्यं देशमेव च ॥१८॥
कृष्णसारो मृगो यत्र स्वभावात्तु प्रवर्तते ।
तस्मिन् देशे वसेर्धर्मं कुरु ब्राह्मणपुंगव ॥१९॥
षट्कर्माणि च यान्याहुर्ब्राह्मणस्य मनीषिणः ।
तैरेव सततं यस्तु प्रवृत्तः सुखमेधते ॥२०॥
अध्ययनाध्यापनं च यजनं याजनं तथा ।
दानं प्रतिग्रहश्चेति कर्मषट्कमिहोच्यते ॥२१॥
अध्यापनं च त्रिविधं धर्मस्यार्थस्य कारणम् ।
शुश्रूषाकारणं चैव त्रिविधं परिकीर्तितम् ॥२२॥
योग्यानध्यापयेच्छिष्यान् याज्यानपि च याजयेत् ।
विधिना प्रतिगृह्णंश्च गृहधर्मप्रसिद्धये ॥२३॥
वेदमेवाभ्यसेन्नित्यं शुभे देशे समाहितः ।
नित्यं नैमित्तिकं काम्यं कर्म कुर्यात् प्रयत्नतः ॥२४॥
गुरुशुश्रूषणं चैव यथान्यायमतन्द्रितः ।
सायं प्रातरुपासीत विधिनाग्निं द्विजोत्तमः ॥२५॥

जो ब्राह्मण-कुलमें उत्पन्न हुई स्त्रीके गर्भ और ब्राह्मणके ही वीर्यसे उत्पन्न हुआ है, वह 'ब्राह्मण' कहा गया है। अब मैं ब्राह्मणके धर्म और निवास-योग्य देशको बता रहा हूँ। ब्रह्माजीने ब्राह्मणको उत्पन्न करके उनसे कहा—'ब्राह्मणश्रेष्ठ ! जिस देशमें कृष्णसार मृग स्वभावतः निवास करता हो, उसी देशमें रहकर तुम धर्मका पालन करो।' मनीषियोंने जो ब्राह्मणके छः कर्म बतलाये हैं, उन्हींके अनुसार जो सदा व्यवहार करता है, वह सुखपूर्वक अभ्युदयशील होता है। अध्ययन (पढ़ना), अध्यापन (पढ़ाना), यजन (यज्ञ करना), याजन (यज्ञ कराना), दान करना और दान लेना—ये ही ब्राह्मणके छः कर्म कहे जाते हैं। इनमेंसे अध्ययन तीन प्रकारका बताया जाता है—पहला धर्मके लिये, दूसरा धनके लिये और तीसरा अपनी सेवा करानेके लिये होता है। ब्राह्मणको चाहिये कि योग्य शिष्योंको पढ़ाये, योग्य यजमानोंका यज्ञ कराये और गृहस्थधर्मकी सिद्धि (जीविका चलाने आदि) के लिये विधिपूर्वक दूसरेका दान भी ग्रहण करे। शुभ स्थानपर रहकर, एकाग्रचित्त हो, प्रतिदिन वेदका ही अभ्यास करे तथा यत्नपूर्वक नित्य, नैमित्तिक और काम्य कर्मोंका अनुष्ठान करे। श्रेष्ठ ब्राह्मणको चाहिये कि आलस्य त्यागकर उचितरूपसे गुरुजनोंकी सेवा करे और प्रतिदिन प्रातःकाल तथा सायंकाल विधिपूर्वक अग्निकी सेवा किया करे ॥१८–२५॥

कृतस्नानस्तु कुर्वीत वैश्वदेवं दिने दिने ।
अतिथिं चागतं भक्त्या पूजयेच्छक्तितो गृही ॥२६॥
अन्यानथागतान् दृष्ट्वा पूजयेदविरोधतः ।
स्वदारनिरतो नित्यं परदारविवर्जितः ॥२७॥

सत्यवादी जितक्रोधः स्वधर्मनिरतो भवेत् ।
स्वकर्मणि च सम्प्राप्ते प्रमादं नैव कारयेत् ॥२८॥
प्रियां हितां वदेद्वाचं परलोकाविरोधिनीम् ।
एवं धर्मः समुद्दिष्टो ब्राह्मणस्य समासतः ।
धर्ममेवं तु यः कुर्यात्स याति ब्रह्मणः पदम् ॥२९॥
इत्येष धर्मः कथितो मया वै
विप्रस्य विप्रा अखिलाघहारी।
वदामि राजादिजनस्य धर्मं
पृथक्पृथग्बोधत विप्रवर्याः ॥३०॥

इति श्रीनरसिंहपुराणे ब्राह्मणधर्मकथनं नाम सप्तपञ्चाशोऽध्यायः ॥ ५७ ॥

गृहस्थ ब्राह्मण स्नान आदिके बाद प्रतिदिन बलिवैश्वदेव करे और घरपर आये हुए अतिथिका अपनी शक्तिके अनुसार भक्तिपूर्वक सम्मान करे। एक अतिथिके आ जानेपर यदि दूसरे भी आ जायँ तो उन्हें भी देखकर विरोध न माने, उनका भी यथाशक्ति सम्मान करे। सदा अपनी ही स्त्रीमें अनुराग रक्खे, दूसरेकी स्त्रीके सम्पर्कसे सदा दूर रहे। सदा सत्य बोले, क्रोध न करे, अपने धर्मका पालन करता रहे। अपने नैत्यिक आदि कर्मका समय प्राप्त होनेपर प्रमाद न करे। जिससे परलोक न बिगड़े—ऐसी सत्य, प्रिय और हितकारिणी वाणी बोले। इस प्रकार मैंने ब्राह्मण-धर्मका संक्षेपसे वर्णन किया। जो ब्राह्मण इस प्रकार अपने धर्मका पालन करता है, वह नित्य ब्रह्मधाम (सत्यलोक) को प्राप्त होता है। विप्रगण ! इस प्रकार मैंने आपलोगोंसे यह ब्राह्मण-धर्म कहा है, यह समस्त पापोंको दूर करनेवाला है। विप्रवरो ! अब क्षत्रियादि जातियोंका पृथक्-पृथक् धर्म बताता हूँ, आप लोग सुनें ॥ २६–३० ॥

इस प्रकार श्रीनरसिंहपुराणमें 'ब्राह्मणधर्मका वर्णन' नामक सत्तावनवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ५७ ॥

अट्ठावनवाँ अध्याय

क्षत्रियादि वर्णोंके धर्म और ब्रह्मचर्य तथा गृहस्थाश्रमके धर्मोंका वर्णन

हारीत उवाच

क्षत्रादीनां प्रवक्ष्यामि यथावदनुपूर्वशः ।
येन येन प्रवर्तन्ते विधिना क्षत्रियादयः ॥ १ ॥
राज्यस्थः क्षत्रियश्चैव प्रजा धर्मेण पालयेत् ।
कुर्यादध्ययनं सम्यग्यजेद्यज्ञान् यथाविधि ॥ २ ॥
दद्याद्दानं द्विजाग्र्येभ्यो धर्मबुद्धिसमन्वितः ।
स्वदारनिरतो नित्यं परदारविवर्जितः ॥ ३ ॥
नीतिशास्त्रार्थकुशलः संधिविग्रहतत्त्ववित् ।
देवब्राह्मणभक्तश्च पितृकार्यपरस्तथा ॥ ४ ॥
धर्मेणैव जयं काङ्क्षेदधर्मं परिवर्जयेत् ।
उत्तमां गतिमाप्नोति क्षत्रियोऽथैवमाचरन् ॥ ५ ॥

श्रीहारीत मुनि बोले—अब मैं क्रमशः क्षत्रियादि वर्णोंके लिये विहित नियमोंका यथावत् वर्णन करूँगा जिनके अनुसार क्षत्रियादिको अपना व्यवहार निभाना चाहिये। राजपदपर स्थित क्षत्रियको उचित है कि वह धर्मपूर्वक प्रजाका पालन करे। उसे भलीभाँति वेदाध्ययन और विधिपूर्वक यज्ञ भी करने चाहिये। धर्मबुद्धिसे युक्त हो श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको दान दे, सदा अपनी ही स्त्रीमें अनुरक्त रहकर परस्त्रीका त्याग करे, नीतिशास्त्रका अर्थ समझनेमें निपुण हो, संधि और विग्रहका तत्त्व समझे। देवताओं और ब्राह्मणोंमें भक्ति रक्खे, पितरोंका पूजन—श्राद्धादि कर्म करे। धर्मपूर्वक ही विजयकी इच्छा करे, अधर्मको भलीभाँति त्याग दे। इस प्रकार आचरण करनेवाला क्षत्रिय उत्तम गतिको प्राप्त होता है ॥ १–५ ॥

गोरक्षाकृषिवाणिज्यं कुर्याद्वैश्यो यथाविधि ।
दानधर्मं यथाशक्त्या गुरुशुश्रूषणं तथा ॥ ६ ॥
लोभदम्भविनिर्मुक्तः सत्यवागनसूयकः ।
स्वदारनिरतो दान्तः परदारविवर्जितः ॥ ७ ॥
धनैर्विप्रान् समर्चेत यज्ञकाले त्वरान्वितः ।
यज्ञाध्ययनदानानि कुर्यान्नित्यमतन्द्रितः ॥ ८ ॥
पितृकार्यं च तत्काले नरसिंहार्चनं तथा ।
एतद्वैश्यस्य कर्मोक्तं स्वधर्ममनुतिष्ठतः ॥ ९ ॥
एतदासेवमानस्तु स स्वर्गी स्यान्न संशयः ।

वैश्यको चाहिये कि वह विधिपूर्वक गोरक्षा, कृषि और व्यापार करे तथा अपनी शक्तिके अनुसार दानधर्म और गुरुसेवा भी करे। लोभ और दम्भसे सर्वथा दूर रहे, सत्यवादी हो, किसीके दोष न देखे, मन और इन्द्रियोंको संयममें रखकर परस्त्रीका त्याग करे और अपनी ही स्त्रीमें अनुरक्त रहे। यज्ञ-कालमें शीघ्रतापूर्वक ब्राह्मणोंका धनसे सम्मान करे तथा आलस्य छोड़कर प्रतिदिन यज्ञ, अध्ययन और दान करता रहे। श्राद्ध-काल प्राप्त होनेपर पितृ-श्राद्ध अवश्य करे और नित्यप्रति भगवान् श्रीनृसिंहदेवका पूजन करे। अपने धर्मका पालन करनेवाले वैश्यके लिये यही कर्तव्य कर्म बतलाया गया है। पूर्वोक्त कर्मका पालन करनेवाला वैश्य निस्संदेह स्वर्गलोकका अधिकारी होता है ॥ ६—९½ ॥

वर्णत्रयस्य शुश्रूषां कुर्याच्छूद्रः प्रयत्नतः ॥१०॥
दासवद्ब्राह्मणानां च विशेषेण समाचरेत्।
अयाचितं प्रदातव्यं कृषिं वृत्त्यर्थमाचरेत् ॥११॥
ग्रहाणां मासिकं कार्यं पूजनं न्यायधर्मतः।
धारणं जीर्णवस्त्रस्य विप्रस्योच्छिष्टमार्जनम् ॥१२॥
स्वदारेषु रतिं कुर्यात् परदारविवर्जितः।
पुराणश्रवणं विप्रान्नरसिंहस्य पूजनम् ॥१३॥
तथा विप्रनमस्कारं कार्यं श्रद्धासमन्वितम्।
सत्यसम्भाषणं चैव रागद्वेषविवर्जनम् ॥१४॥
इत्थं कुर्वन् सदा शूद्रो मनोवाक्कायकर्मभिः।
स्थानमैन्द्रमवाप्नोति नष्टपापस्तु पुण्यभाक् ॥१५॥

शूद्रको चाहिये कि वह यत्नपूर्वक इन तीनों वर्णोंकी सेवा करे और ब्राह्मणोंकी तो दासकी भाँति विशेषरूपसे शुश्रूषा करे। किसीसे माँगकर नहीं, अपनी ही कमाईका दान करे। जीविकाके लिये कृषि-कर्म करे। प्रत्येक मासमें न्याय और धर्मके अनुसार ग्रहोंका पूजन करे, पुराना वस्त्र धारण करे। ब्राह्मणका जूठा बर्तन माँजे। अपनी स्त्रीमें अनुराग रक्खे। परस्त्रियोंको दूरसे ही त्याग दे। ब्राह्मणके मुखसे पुराण-कथा श्रवण करे, भगवान् नरसिंहका पूजन करे। इसी प्रकार ब्राह्मणोंको श्रद्धापूर्वक नमस्कार करे। राग-द्वेष त्याग दे और सत्यभाषण करे। इस प्रकार मन, वाणी, शरीर और कर्मसे आचरण करनेवाला शूद्र पापरहित हो पुण्यका भागी होता है और मृत्युके पश्चात् इन्द्रलोकको प्राप्त होता है ॥१०—१५॥

वर्णेषु धर्मा विविधा मयोक्ता
यथाक्रमं ब्राह्मणवर्यसाधिताः।
शृणुध्वमत्राश्रमधर्ममाद्यं
मयोच्यमानं क्रमशो मुनीन्द्राः ॥१६॥

मुनीन्द्रगण! वर्णोंके ये नाना प्रकारके धर्म मैंने आपलोगोंसे क्रमशः कहे हैं। इन्हें श्रेष्ठ ब्राह्मणोंने बतलाया है। अब मैं क्रमसे प्रथम ब्रह्मचर्य-आश्रमके धर्म बता रहा हूँ, आप लोग सुनें ॥ १६ ॥

हारीत उवाच

उपनीतो माणवको वसेद्गुरुकुले सदा।
गुरोः प्रियहितं कार्यं कर्मणा मनसा गिरा ॥१७॥
ब्रह्मचर्यमधःशय्या तथा वह्नेरुपासनम्।
उदकुम्भं गुरोर्दद्यात्तथा चेन्धनमाहरेत् ॥१८॥
कुर्यादध्ययनं पूर्वं ब्रह्मचारी यथाविधि।
विधिं हित्वा प्रकुर्वाणो न स्वाध्यायफलं लभेत् ॥१९॥
यत्किंचित्कुरुते कर्म विधिं हित्वा निरात्मकः।
न तत्फलमवाप्नोति कुर्वाणो विधिविच्युतः ॥२०॥
तस्मादेवं व्रतानीह चरेत्स्वाध्यायसिद्धये।
शौचाचारमशेषं तु शिक्षयेद्गुरुसंनिधौ ॥२१॥
अजिनं दण्डकाष्ठं च मेखलां चोपवीतकम्।
धारयेदप्रमत्तस्तु ब्रह्मचारी समाहितः ॥२२॥
सायं प्रातश्चरेद्भैक्षं भोजनं संयतेन्द्रियः।
गुरोः कुले न भिक्षेत न ज्ञातिकुलबन्धुषु ॥२३॥
अलाभे त्वन्यगेहानां पूर्वंपूर्वं च वर्जयेत्।
आचम्य प्रयतो नित्यमश्नीयाद्गुर्वनुज्ञया ॥२४॥
शयनाद् पूर्वमुत्थाय दर्भमृद्दन्तशोधनम्।
वस्त्रादिकमथान्यच्च गुरवे प्रतिपादयेत् ॥२५॥
स्नाने कृते गुरौ पश्चात्स्नानं कुर्वीत यत्नवान्।
ब्रह्मचारी व्रती नित्यं न कुर्याद्दन्तशोधनम् ॥२६॥

श्रीहारीत मुनि बोले—उपनयन-संस्कार हो जानेके बाद ब्रह्मचारी बालक सदा गुरुकुलमें निवास करे। उसको चाहिये कि मन, वाणी और कर्मसे गुरुका प्रिय और हित करे। वह ब्रह्मचर्यका पालन, भूमिपर शयन और अग्निकी उपासना

करे। गुरुके लिये जलका घड़ा भरकर लाये और हवनके निमित्त समिधा ले आये। इस प्रकार सर्वप्रथम ब्रह्मचर्य आश्रममें रहकर विधिपूर्वक अध्ययन करना चाहिये। जो विधिका त्याग करके अध्ययन करता है, उसे उस अध्ययनका फल नहीं प्राप्त होता (उसकी विद्या सफल नहीं होती)। विधिकी अवहेलना करके वह जो कुछ भी कर्म करता है, विधिभ्रष्ट एवं नास्तिक होनेके कारण उसे उसका फल नहीं मिलता। इसलिये गुरुकुलमें रहकर अपने अध्ययनकी सफलताके लिये उपर्युक्त व्रतोंका आचरण करना चाहिये और गुरुके निकट समस्त शौचाचारोंको सीखना चाहिये। ब्रह्मचारी सावधान और एकाग्रचित्त रहकर मृगचर्म, पलाशदण्ड, मेखला और उपवीत (जनेऊ) धारण करे। अपनी इन्द्रियोंको वशमें रखकर सायंकाल और प्रातःकाल भिक्षासे मिला हुआ अन्न भोजन करे। गुरुके कुलमें और उनके कुटुम्बी बन्धु-बान्धवोंके घरमें भिक्षा न माँगे। दूसरेके घर न मिले तो पूर्वोक्त घरोंमेंसे भी भिक्षा ले सकता है; किंतु यथासाध्य पूर्व-पूर्व गृहोंका त्याग करे। अर्थात् पहले कहे हुए गुरुगृह या गुरुकुलका त्यागकर अन्यत्र भिक्षा ले। नित्य आचमन करके शुद्धचित्त होकर गुरुकी आज्ञासे भोजन करे। रात्रि बीतनेपर गुरुसे पहले ही अपने आसनसे उठ जायँ और गुरुके लिये कुश, मिट्टी, दाँतुन और वस्त्र आदि अन्य सामान एकत्र करके उनको दे। गुरुजीके स्नान कर लेनेपर स्वयं यत्नपूर्वक स्नान करे। ब्रह्मचारी सदा व्रत रक्खे और काठ आदिसे दन्तधावन न करे ॥ १७—२६ ॥

छत्रोपानहमभ्यङ्गं गन्धमाल्यानि वर्जयेत्।
नृत्यगीतकथालापं मैथुनं च विशेषतः ॥२७॥
वर्जयेन्मधु मांसं च रसास्वादं तथा स्त्रियः।
कामं क्रोधं च लोभं च परिवादं तथा नृणाम् ॥२८॥
स्त्रीणां च प्रेक्षणालम्भमुपघातं परस्य च।
एकः शयीत सर्वत्र न रेतः स्कन्दयेत् क्वचित् ॥२९॥
स्वप्ने सिक्त्वा ब्रह्मचारी द्विजः शुक्रमकामतः।
स्नात्वार्कमर्चयित्वाग्निं पुनर्मामित्यृचं जपेत् ॥३०॥
आस्तिकोऽहरहः संध्यां त्रिकालं संयतेन्द्रियः।
उपासीत यथान्यायं ब्रह्मचारिव्रते स्थितः ॥३१॥
अभिवाद्य गुरोः पादौ संध्याकर्मावसानतः।
यथायोगं प्रकुर्वीत मातापित्रोस्तु भक्तितः ॥३२॥
एतेषु त्रिषु तुष्टेषु तुष्टाः स्युः सर्वदेवताः।
तदेषां शासने तिष्ठेद्ब्रह्मचारी विमत्सरः ॥३३॥
अधीत्य चतुरो वेदान् वेदौ वेदमथापि वा।
गुरवे दक्षिणां दत्त्वा तदा स्वस्वेच्छया वसेत् ॥३४॥
विरक्तः प्रव्रजेद्विद्वान् संरक्तस्तु गृही भवेत्।
सरागो नरकं याति प्रव्रजन् हि ध्रुवं द्विजः ॥३५॥
यस्यैतानि सुगुप्तानि जिह्वोपस्थोदरं गिरः।
संन्यसेदकृतोद्वाहो ब्राह्मणो ब्रह्मचर्यवान् ॥३६॥

छाता, जूता, उबटन, गन्धयुक्त इत्र आदि और फूल-माला आदिका त्याग दे। विशेषतः नाच, गान और ग्राम्य कथा-वार्ता एवं मैथुनका सर्वथा त्याग करे। मधु, मांस और रसास्वाद (जिह्वाके स्वाद)का त्याग दे। स्त्रियोंसे अलग रहे। काम, क्रोध, लोभ तथा दूसरे मनुष्योंके अपवाद (निन्दा) का परित्याग करे। स्त्रियोंकी ओर देखने, उनका स्पर्श करने और दूसरे जीवोंकी हिंसा करने आदिसे बचकर रहे। सब जगह अकेले ही शयन करे, कभी कहीं भी वीर्यपात न करे। यदि कामभाव न होनेपर भी स्वप्नमें वीर्य-स्खलन हो जाय तो ब्रह्मचारी द्विजको चाहिये, वह स्नान करके सूर्य और अग्निकी आराधना करे तथा 'पुनर्मामैत्विन्द्रियम्' इस ऋचाका जप करे। ईश्वर और परलोकके अस्तित्वपर विश्वास करता हुआ, ब्रह्मचारियोंके लिये उचित व्रतके पालनमें तत्पर रहकर, जितेन्द्रिय हो, प्रतिदिन न्यायतः प्राप्त त्रिकालसंध्याकी उपासना करे। संध्या-कर्म समाप्त होनेपर गुरुके चरणोंमें प्रणाम करे और यदि सुयोग प्राप्त हो तो माता-पिताके चरणोंमें भी भक्तिपूर्वक प्रणाम करे। इन तीनोंके संतुष्ट होनेपर सम्पूर्ण देवता प्रसन्न रहते हैं; इसलिये ब्रह्मचारीको चाहिये कि डाह छोड़कर इन तीनोंके शासनमें रहे। यथासम्भव चार, दो अथवा एक ही वेदका अध्ययन पूर्ण करके गुरुको दक्षिणा दे। फिर अपने इच्छानुसार कहीं भी निवास करे। यदि वह विद्वान् ब्रह्मचारी विरक्त हो, तब तो संन्यासी हो जाय; किंतु यदि उसका विषय-भोगोंके प्रति अनुराग हो तो गृहस्थाश्रममें प्रवेश करे। द्विजो ! रागी पुरुष यदि संन्यासी हो जाय तो वह निश्चय ही नरकमें जाता है। जिसकी जिह्वा, उपस्थ (जननेन्द्रिय), उदर और वाणी शुद्ध हों, अर्थात् जो स्वाद, काम और बुभुक्षाको जीत चुका हो और सत्यवादी या मौन

रहता हो, वह पुरुष यदि ब्रह्मचर्यवान् ब्राह्मण हो तो वह विवाह न करके संन्यास ले सकता है ॥ २७—३६ ॥

एवं यो विधिमास्थाय नयेत्कालमतन्द्रितः ।
तेन भूयः प्रजायेत ब्रह्मचारी दृढव्रतः ॥३७॥
यो ब्रह्मचारी विधिमेतमास्थित-
श्चरेत्पृथिव्यां गुरुसेवने रतः ।
सम्प्राप्य विद्यामपि दुर्लभां तां
फलं हि तस्याः सकलं हि विन्दति ॥३८॥

इस प्रकार जो आलस्य त्यागकर विधिका पालन करते हुए ही समय-यापन करता है, वह ब्रह्मचारी अधिकाधिक दृढ़ व्रतवाला होता है। जो ब्रह्मचारी पूर्वोक्त विधिका सहारा लेकर गुरु-सेवापरायण हो पृथ्वीपर भ्रमण करता है, वह दुर्लभ विद्याको भी सीखकर उसके सम्पूर्ण फलोंको प्राप्त कर लेता है* ॥ ३७-३८ ॥

हारीत उवाच

गृहीतवेदाध्ययनः श्रुतिशास्त्रार्थतत्त्ववित् ।
गुरोर्दत्तवरः सम्यक् समावर्तनमारभेत् ॥३९॥
असमाननामगोत्रां कन्यां भ्रातृयुतां शुभाम् ।
सर्वावयवसंयुक्तां सद्वृत्तामुद्वहेत्ततः ॥४०॥
नोद्वहेत्कपिलां कन्यां नाधिकाङ्गीं न रोगिणीम् ।
वाचालामतिलोमां च न व्यङ्गां भीमदर्शनाम् ॥४१॥
नर्क्षवृक्षनदीनाम्नीं नान्तपर्वतनामिकाम् ।
न पक्ष्यहिप्रेष्यनाम्नीं न च भीषणनामिकाम् ॥४२॥
अव्यङ्गाङ्गीं सौम्यनाम्नीं हंसवारणगामिनीम् ।
तन्वोष्ठकेशदशनां मृद्वङ्गीमुद्वहेत्स्त्रियम् ॥४३॥
ब्राह्मेण विधिना कुर्यात्प्रशस्तेन द्विजोत्तमः ।
यथायोगं तथा ह्येवं विवाहं वर्णधर्मतः ॥४४॥

श्रीहारीत मुनि कहते हैं—पूर्वोक्त रीतिसे वेदाध्ययन समाप्तकर श्रुति तथा अन्यान्य शास्त्रोंके अर्थ एवं तत्त्वका ज्ञान रखनेवाला ब्रह्मचारी विद्वान् गुरुसे आशीर्वाद प्राप्तकर विधिपूर्वक समावर्तन-संस्कार आरम्भ करे। फिर, जिसके नाम और गोत्र अपने-से भिन्न हों, जिसके भाई भी हो, जो सुन्दरी एवं शुभ लक्षणोंवाली हो, जिसके शरीरके सभी अवयव अविकल हों और जिसका आचरण उत्तम हो, ऐसी कन्याके साथ विवाह करे। जिसके शरीरका रंग कपिल हो, जो अधिकाङ्गी या रोगिणी हो, बहुत बोलनेवाली और अधिक रोमवाली हो, जिसका कोई अङ्ग विकृत या हीन हो और जिसकी सूरत डरावनी हो, ऐसी कन्यासे विवाह न करे। जिसका नाम नक्षत्र, वृक्ष या नदीके नामपर रक्खा गया हो, अथवा जिसके नामके अन्तमें पर्वतवाचक शब्द हो, अथवा जो पक्षी, साँप और दास आदि अर्थवाले नामोंसे युक्त हो, या जिसका भयंकर नाम हो, ऐसी कन्यासे भी विवाह न करे। जिसके शरीरके सभी अवयव सुडौल हों, नाम कोमल और मधुर हो, जो हंस या गजराजके समान मन्द एवं लीलायुक्त गतिसे चलनेवाली हो, जिसके अधर, दाँत और केश पतले हों एवं जिसका शरीर कोमल हो, ऐसी कन्यासे विवाह करे। श्रेष्ठ द्विजातिको चाहिये कि यथासम्भव सर्वोत्तम ब्राह्मविधिसे विवाह करे। इस प्रकार वर्णधर्मके अनुसार विवाह-संस्कार पूर्ण करना चाहिये ॥ ३९—४४ ॥

उषःकाले समुत्थाय कृतशौचो द्विजोत्तमः ।
कुर्यात्स्नानं ततो विद्वान्दन्तधावनपूर्वकम् ॥४५॥
मुखे पर्युषिते नित्यं यतोऽपूतो भवेन्नरः ।
तस्माच्छुष्कमथार्द्रं वा भक्षयेद्दन्तधावनम् ॥४६॥
खदिरं च कदम्बं च करञ्जं च वटं तथा ।
अपामार्गं च विल्वं च अर्कश्चोदुम्बरस्तथा ॥४७॥
एते प्रशस्ताः कथिता दन्तधावनकर्मणि ।
दन्तधावनकाष्ठं च वक्ष्यामि तत्प्रशस्तताम् ॥४८॥

इसके बाद विद्वान् द्विजको चाहिये कि प्रतिदिन सूर्योदयसे पूर्व उठकर शौचादिके अनन्तर दन्तधावन करके तुरंत स्नान कर ले। प्रतिदिन रातमें सोकर उठनेके बाद मुख पर्युषित होनेके कारण मनुष्य अपवित्र रहता है, अतः शुद्धिके लिये सूखा या गीला दन्तधावन अवश्य चबाना चाहिये। दाँतनके लिये खदिर, कदम्ब, करञ्ज, वट, अपामार्ग, विल्व, मदार और गूलर—ये वृक्ष उत्तम माने गये हैं। दन्तधावनके लिये उपयुक्त काष्ठ और उसकी उत्तमताका लक्षण बता रहा हूँ ॥ ४५—४८ ॥

सर्वे कण्टकिनः पुण्याः क्षीरिणस्तु यशस्विनः ।
अष्टाङ्गुलेन मानेन तत्प्रमाणमिहोच्यते ॥४९॥

* इससे आगे 'हारीत उवाच' पुनः दिया गया है। इससे जान पड़ता है, यह अध्याय यहाँ पूर्ण हो गया है।

प्रादेशमात्रमथवा तेन दन्तान् विशोधयेत् ।
प्रतिपद्दर्शषष्ठीषु नवम्यां चैव सत्तमाः ॥५०॥
दन्तानां काष्ठसंयोगाद् दहत्यासप्तमं कुलम् ।
अलाभे दन्तकाष्ठस्य प्रतिषिद्धे च तद्दिने ॥५१॥
अपां द्वादशगण्डूषैर्मुखशुद्धिर्विधीयते ।

जितने काँटेवाले वृक्ष हैं, वे सभी पवित्र हैं । जितने दूधवाले वृक्ष हैं, वे सभी यश देनेवाले हैं । दाँतुनकी लकड़ीकी लंबाई आठ अंगुलकी बतायी जाती है । अथवा बित्तामात्र उसकी लंबाई होनी चाहिये । ऐसी दाँतुनसे दाँतोंको स्वच्छ करना चाहिये । परंतु साधुशिरोमणियो ! प्रतिपदा, अमावास्या, षष्ठी और नवमीको काठकी दाँतुन नहीं करनी चाहिये; क्योंकि उक्त तिथियोंको यदि दाँतसे काठका सयोग हो जाय तो वह सात पीढ़ीतकके कुलको दग्ध कर डालता है । जिस दिन दाँतुन न मिले या जिस दिन दाँतुन करना निषिद्ध है, उस दिन बारह बार जलका कुल्ला करके मुखकी शुद्धि कर लेनेकी विधि है ॥ ४९–५१½ ॥

स्नात्वा मन्त्रवदाचम्य पुनराचमनं चरेत् ॥५२॥
मन्त्रवान् प्रोक्ष्य चात्मानं प्रक्षिपेदुदकाञ्जलिम् ।
आदित्येन सह प्रातर्मन्देहा नाम राक्षसाः ॥५३॥
युध्यन्ति वरदानेन ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः ।
उदकाञ्जलिविक्षेपो गायत्र्या चाभिमन्त्रितः ॥५४॥
तान् हन्ति राक्षसान् सर्वान् मन्देहान् रविवैरिणः ।
ततः प्रयाति सविता ब्राह्मणै रक्षितो दिवि ॥५५॥
मरीच्याद्यैर्महाभागैः सनकाद्यैश्च योगिभिः ।
तस्मान्न लङ्घयेत्संध्यां सायं प्रातर्द्विजः सदा ॥५६॥
उल्लङ्घयति यो मोहात्स याति नरकं ध्रुवम् ।
सायं मन्त्रवदाचम्य प्रोक्ष्य सूर्यस्य चाञ्जलिम् ॥५७॥
दत्त्वा प्रदक्षिणं कृत्वा जलं स्पृष्ट्वा विशुध्यति ।
पूर्वां संध्यां सनक्षत्रामुपक्रम्य यथाविधि ॥५८॥
गायत्रीमभ्यसेत्तावद्यावद्दक्षाणि पश्यति ।
ततस्त्वावसथं प्राप्य होमं कुर्यात्स्वयं बुधः ॥५९॥
संचिन्त्य भृत्यवर्गस्य भरणार्थं विचक्षणः ।
ततः शिष्यहितार्थाय स्वाध्यायं किंचिदाचरेत् ॥६०॥
ईश्वरं चैव रक्षार्थमभिगच्छेद्द्विजोत्तमः ।
कुशपुष्पेन्धनादीनि गत्वा दूरात्समाहरेत् ॥६१॥
माध्याह्निकीं क्रियां कुर्याच्छुचौ देशे समाहितः ।

दाँतुनके बाद स्नान करे । फिर मन्त्रपाठपूर्वक आचमन करके पुनः आचमन करना चाहिये । मन्त्रपाठपूर्वक अपने ऊपर भी जल छिड़के और सूर्यके लिये अर्घ्यके तौरपर जलाञ्जलि भरकर उछाले । अव्यक्तजन्मा ब्रह्माजीके वरदानसे प्रबल हुए 'मन्देह' नामक राक्षस प्रतिदिन प्रातःकाल आकर सूर्यके साथ युद्ध करते हैं; किंतु जब गायत्रीसे अभिमन्त्रित जलाञ्जलि सूर्यदेवके सामने उछाली जाती है, तब वह उन समस्त सूर्य-वैरी मन्देह नामके राक्षसोंको मार भगाती है ।* तत्पश्चात् महाभाग मरीचि आदि ब्राह्मणों और सनकादिक योगियोंद्वारा रक्षित हो, भगवान् सूर्यदेव आकाशमें आगे बढ़ते हैं । इसलिये द्विजको चाहिये कि सायं और प्रातःकालकी संध्याका कभी उल्लङ्घन न करे । जो मोहवश संध्याका उल्लङ्घन करता है, वह अवश्य ही नरकमें पड़ता है । यदि सायंकालमें मन्त्रपाठपूर्वक आचमन करके अपने ऊपर जल छिड़ककर फिर भगवान् सूर्यको जलाञ्जलि अर्पित की जाय और उनकी परिक्रमा करके पुनः जलका स्पर्श किया जाय तो वह द्विज शुद्ध हो जाता है । प्रातःकालकी संध्या तारोंके रहते-रहते विधिपूर्वक आरम्भ करे और जबतक तारोंका दर्शन हो, तबतक गायत्रीका जप करता रहे । तत्पश्चात् घरमें आकर विद्वान् पुरुषको स्वयं हवन करना चाहिये । फिर जो भृत्य—पालनीय कुटुम्बी जन तथा दास आदि हों, उनके भरण-पोषणके लिये विद्वान् गृहस्थ चिन्ता (आवश्यक प्रबन्ध) करे । उसके बाद शिष्योंके हितके लिये कुछ देरतक स्वाध्याय करे । उत्तम द्विजको चाहिये कि अपनी रक्षाके लिये ईश्वरका सहारा ले । फिर दूर जाकर पूजाके लिये कुश, फूल और हवनके लिये समिधा आदि ले आये और पवित्र स्थानमें एकाग्रचित्तसे बैठकर मध्याह्न-कालिक क्रिया (संध्योपासना आदि) करे ॥ ५२–६१½ ॥

---

* यहाँ 'मन्देह' राक्षस आलस्यके प्रतीक हैं । जिस देशमें जब रात बीतकर प्रातःकाल होता है, वहाँके लोगोंको उसी समय आलस्य दबाये रहता है । 'सूर्य आत्मा जगतः' के अनुसार सूर्य सबके आत्मा हैं, अतः किसी भी प्राणीपर आलस्यका आक्रमण सूर्यपर मन्देहका आक्रमण है । स्नान और सूर्यार्घ्यसे इस मन्देह या आलस्यका निवारण सबके प्रत्यक्ष अनुभवमें आता है ।

विधिं स्नानस्य वक्ष्यामि समासात्पापनाशनम्॥६२॥
स्नात्वा येन विधानेन सद्यो मुच्येत किल्बिषात्।
सुधीः स्नानार्थमादाय शुक्लां कुशतिलैः सह ॥६३॥
सुमनाश्च ततो गच्छेन्नदीं शुद्धां मनोरमाम् ।
नद्यां तु विद्यमानायां न स्नायादल्पवारिषु ॥६४॥
शुचौ देशे समभ्युक्ष्य स्थापयेत्कुशमृत्तिकाम् ।
मृत्तोयेन स्वकं देहमभिप्रक्षाल्य यत्नतः ॥६५॥
स्नानाच्छरीरं संशोध्य कुर्यादाचमनं बुधः ।
शुभे जले प्रविश्याथ नमेद्वरुणमप्पतिम् ॥६६॥
हरिमेव स्मरंश्चित्ते निमज्जेच्च बहूदके ।
ततः स्नानं समासाद्य अप आचम्य मन्त्रतः ॥६७॥
प्रोक्षयेद्वरुणं देवं तैर्मन्त्रैः पावमानिभिः ।
कुशाग्रस्थेन तोयेन प्रोक्ष्यात्मानं प्रयत्नतः ॥६८॥
आलभेन्मृत्तिकां गात्रे इदं विष्णुरिति त्रिधा ।
ततो नारायणं देवं संस्मरन् प्रविशेज्जलम् ॥६९॥
निमज्ज्यान्तर्जले सम्यक्त्रिः पठेदघमर्षणम् ।
स्नात्वा कुशतिलैस्तद्वद्देवर्षीन् पितृभिः सह ॥७०॥
तर्पयित्वा जलात्तस्मान्निष्क्रम्य च समाहितः ।
जलतीरं समासाद्य धौते शुक्ले च वाससी ॥७१॥
परिधायोत्तरीयं च न कुर्यात्केशधूननम् ।
न रक्तमुल्बणं वासो न नीलं तत्प्रशस्यते ॥७२॥
मलाक्तं तु दशाहीनं वर्जयेदम्बरं बुधः ।

अब हम थोड़ेमें स्नानकी विधि बतला रहे हैं, जो समस्त पापोंको नष्ट करनेवाली है। उस विधिसे स्नान करके मनुष्य तत्काल पापोंसे मुक्त हो जाता है। बुद्धिमान् पुरुषको चाहिये कि स्नानके लिये कुश और तिलोंके साथ शुद्ध मिट्टी ले ले तथा प्रसन्नचित्त होकर शुद्ध और मनोहर नदीके तटपर जाय। नदीके होते हुए छोटे जलाशयोंमें स्नान न करे। वहाँ पवित्र स्थानपर उसे छिड़ककर कुश और मृत्तिका आदि रख दे। फिर विद्वान् पुरुष मिट्टी और जलसे अपने शरीरको यत्नपूर्वक लिप्त करके, शुद्ध स्नानके द्वारा उसे धोकर, पुनः आचमन करे। तदनन्तर स्वच्छ जलमें प्रवेश करके जलेश वरुणको नमस्कार करे। फिर मन-ही-मन भगवान् विष्णुका स्मरण करते हुए जहाँ कुछ अधिक जल हो, वहाँ डुबकी लगाये। इसके बाद स्नान समाप्तकर, मन्त्रपाठपूर्वक आचमन करके, वरुण-सम्बन्धी पवमान-मन्त्रोंद्वारा वरुणदेवका अभिषेक करे। फिर कुशके अग्र-भागपर स्थित जलसे अपना यत्नपूर्वक मार्जन करे और 'इदं विष्णुर्विचक्रमे' इस मन्त्रका पाठ करते हुए अपने शरीरके तीन भागोंमें क्रमशः मृत्तिकाका लेप करे। तत्पश्चात् भगवान् नारायणका स्मरण करते हुए जलमें प्रवेश करे। जलके भीतर भली प्रकार डुबकी लगाकर तीन बार अघमर्षण पाठ करे। इस प्रकार स्नान करके कुश और तिलोंद्वारा देवताओं, ऋषियों और पितरोंका तर्पण करे। इसके बाद समाहितचित्त हो, जलसे बाहर निकल, तटपर आकर धुले हुए दो श्वेत वस्त्रोंको धारण करे। इस प्रकार धोती और उत्तरीय धारणकर अपने केशोंको न फटकारे। अत्यधिक लाल और नील वस्त्र धारण करना भी उत्तम नहीं माना गया है। विद्वान् पुरुषको चाहिये कि जिस वस्त्रमें मल या दाग लगा हो, अथवा जिसमें किनारी न हो, उसका भी त्याग करे॥ ६२–७२½ ॥

ततः प्रक्षालयेत्पादौ मृत्तोयेन विचक्षणः ॥७३॥
त्रिः पिबेद्वीक्षितं तोयमास्यं द्विः परिमार्जयेत्।
पादौ शिरसि चाभ्युक्षेत्त्रिराचम्य तु संस्पृशेत्॥७४॥
अङ्गुष्ठेन प्रदेशिन्या नासिकां समुपस्पृशेत् ।
अङ्गुष्ठकनिष्ठिकाभ्यां नाभौ हृदि तलेन च ॥७५॥
शिरश्चाङ्गुलिभिः सर्वैर्बाहुं चैव ततः स्पृशेत् ।
अनेन विधिनाऽऽचम्य ब्राह्मणः शुद्धमानसः॥७६॥
दर्भे तु दर्भपाणिः स्यात् प्राङ्मुखः सुसमाहितः।
प्राणायामांस्तु कुर्वीत यथाशास्त्रमतन्द्रितः ॥७७॥

इसके पश्चात् विज्ञ पुरुष मिट्टी और जलसे अपने चरणोंको धोये। फिर खूब देख-भालकर शुद्ध जलसे तीन बार आचमन करे। दो बार जल लेकर मुँह धोये। पैर और सिरपर जल छिड़के। फिर तीन बार आचमन करके क्रमशः अङ्गोंका स्पर्श करे। अँगूठे और तर्जनीसे नासिकाका स्पर्श करे। अङ्गुष्ठ और कनिष्ठिकासे नाभिका स्पर्श करे। हृदयका करतलसे स्पर्श करे। तदनन्तर समस्त अँगुलियोंसे पहले सिरका, फिर बाहुओंका स्पर्श करे। इस प्रकार आचमन करके ब्राह्मण शुद्धहृदय हो, हाथमें कुश ले, पूर्वकी ओर मुख करके एकाग्रतापूर्वक कुशासनपर बैठ जाय और आलस्यको त्यागकर शास्त्रोक्त विधिसे तीन बार प्राणायाम करे॥७३–७७॥

जपयज्ञं ततः कुर्याद्गायत्रीं वेदमातरम् ।
त्रिविधो जपयज्ञः स्यात्तस्य भेदं निबोधत ॥७८॥
वाचिकश्च उपांशुश्च मानसस्त्रिविधः स्मृतः ।
त्रयाणां जपयज्ञानां श्रेयः स्यादुत्तरोत्तरम् ॥७९॥
यदुच्चनीचस्वरितैः स्पष्टशब्दवदक्षरैः ।
शब्दमुच्चारयेद्वाचा जपयज्ञः स वाचिकः ॥८०॥
शनैरुच्चारयेन्मन्त्रमीषदोष्ठौ प्रचालयेत् ।
किंचिन्मन्त्रं स्वयं विन्द्यादुपांशुः स जपः स्मृतः ॥८१॥
धिया यदक्षरश्रेण्या वर्णाद्वर्णं पदात्पदम् ।
शब्दार्थचिन्तनं ध्यानं तदुक्तं मानसं जपः ॥८२॥
जपेन देवता नित्यं स्तूयमाना प्रसीदति ।
प्रसन्ना विपुलान् भोगान्दद्यान्मुक्तिं च शाश्वतीम् ८३
यक्षरक्षःपिशाचाश्च ग्रहाः सूर्यादिदूषणाः ।
जापिनं नोपसर्पन्ति दूरादेवापयान्ति ते ॥८४॥

तत्पश्चात् वेदमाता गायत्रीका जप करते हुए जप-यज्ञ करे । जपयज्ञ तीन प्रकारका होता है; उसका भेद बताते हैं, आपलोग सुनें । वाचिक, उपांशु और मानस—तीन प्रकारका जप कहा गया है । इन तीनों जप-यज्ञोंमें उत्तरोत्तर जप श्रेष्ठ है; अर्थात् वाचिक जपकी अपेक्षा उपांशु और उसकी अपेक्षा मानस जप श्रेष्ठ है । अब इनके लक्षण बताते हैं । जप करनेवाला पुरुष आवश्यकतानुसार ऊँचे, नीचे और समान स्वरोंमें बोले जानेवाले स्पष्ट शब्दयुक्त अक्षरोंद्वारा जो वाणीसे सुस्पष्ट शब्दोच्चारण करता है, वह 'वाचिक जप' कहलाता है । इसी प्रकार जो तनिक-सा ओठोंको हिलाकर धीरे-धीरे मन्त्रका उच्चारण करता है और मन्त्रको स्वयं ही कुछ-कुछ सुनता या समझता है, उसका वह जप 'उपांशु' कहलाता है । बुद्धिके द्वारा मन्त्राक्षरसमूहके प्रत्येक वर्ण, प्रत्येक पद और शब्दार्थका जो चिन्तन एवं ध्यान किया जाता है, वह 'मानस जप' कहा गया है । जपके द्वारा प्रतिदिन जिसका स्तवन किया जाता है, वह देवता प्रसन्न होता है और प्रसन्न होनेपर वह विपुल भोग तथा नित्य मोक्ष-सुखको भी देता है । यक्ष-राक्षस-पिशाच आदि और सूर्यादि देवताओंको दूषित करनेवाले अन्य (राहु-केतु आदि) ग्रह भी जप करनेवाले पुरुषके निकट नहीं जाते, दूरसे ही भाग जाते हैं ॥ ७८–८४ ॥

ऋक्षादिकं परिज्ञाय जपयज्ञमतन्द्रितः ।
जपेदहरहः स्नात्वा सावित्रीं तन्मना द्विजः ॥८५॥
सहस्रपरमां देवीं शतमध्यां दशावराम् ।
गायत्रीं यो जपेन्नित्यं न स पापैर्हि लिप्यते ॥८६॥

द्विजको चाहिये कि वह आलस्यका त्याग करके प्रतिदिन तारोंको देखकर अर्थात् तारोंके रहते-रहते स्नान करके, गायत्रीके अर्थमें मन लगा गायत्री-मन्त्रका जप करे । जो द्विज अधिक-से-अधिक एक हजार, साधारणतया एक सौ अथवा कम-से-कम दस बार प्रतिदिन गायत्रीका जप करता है, वह पापोंसे लिप्त नहीं होता ॥ ८५-८६ ॥

अथ पुष्पाञ्जलिं दत्त्वा भानवे चोर्ध्वबाहुकः ।
उदुत्यं च जपेन्मन्त्रं चित्रं तच्चक्षुरित्यपि ॥८७॥
प्रदक्षिणमुपावृत्य नमस्कुर्याद्दिवाकरम् ।
स्वेन तीर्थेन देवादीनद्भिः संतर्पयेद्बुधः ॥८८॥
देवान्देवगणांश्चैव ऋषीनृषिगणांस्तथा ।
पितॄन् पितृगणांश्चैव नित्यं संतर्पयेद्बुधः ॥८९॥
स्नानवस्त्रं ततः पीड्य पुनराचमनं चरेत् ।
दर्भेषु दर्भपाणिः स्याद्ब्रह्मयज्ञविधानतः ॥९०॥
प्राङ्मुखो ब्रह्मयज्ञं तु कुर्याद्बुद्धिसमन्वितः।
ततोऽर्घ्यं भानवे दद्यात्तिलपुष्पजलान्वितम् ॥९१॥
उत्थाय मूर्धपर्यन्तं हंसः शुचिषदित्यृचा ।
जले देवं नमस्कृत्य ततो गृहगतः पुनः ॥९२॥
विधिना पुरुषसूक्तेन तत्र विष्णुं समर्चयेत् ।
वैश्वदेवं ततः कुर्याद्बलिकर्म यथाविधि ॥९३॥

इसके बाद सूर्यदेवको पुष्पाञ्जलि अर्पित करके अपनी भुजाएँ ऊपर उठाकर 'ॐ उदुत्यं जातवेदसम्' तथा 'ॐ तच्चक्षुर्देवहितम्' इन मन्त्रोंका जप करे । फिर प्रदक्षिणा करके सूर्यदेवको प्रणाम करे । तत्पश्चात् विद्वान् पुरुष प्रतिदिन देवतीर्थसे (उँगलियोंद्वारा) देवताओंका तर्पण करे । विज्ञ पुरुषको देवताओं और उनके गणोंका, ऋषियों और उनके गणोंका तथा पितरों और पितृगणोंका प्रतिदिन तर्पण करना चाहिये । तदनन्तर स्नानके बाद उतारे हुए वस्त्रको निचोड़कर पुनः आचमन

करे। फिर हाथमें कुश लेकर कुशासनपर बैठ जाय और ब्रह्मयज्ञकी विधिके अनुसार पूर्वाभिमुख हो बुद्धिपूर्वक ब्रह्मयज्ञ (वेदका स्वाध्याय) करे। तदनन्तर खड़ा होकर तिल, फूल और जलसे युक्त अर्घ्यपात्रको अपने मस्तकतक ऊँचे उठा 'हंसः शुचिषत्०' इस ऋचाका पाठ करते हुए सूर्यदेवके लिये अर्घ्य दे। फिर जलमें स्थित वरुणदेवको नमस्कार कर पुनः घरपर आ जाय और वहाँ पुरुषसूक्तसे भगवान् विष्णुका विधिवत् पूजन करे। तदनन्तर विधिपूर्वक बलिवैश्वदेव कर्म करे ॥ ८७–९३ ॥

गोदोहमात्रमतिथिं प्रतिवीक्षेत वै गृही।
अदृष्टपूर्वमतिथिमागतं प्राक् समर्चयेत् ॥९४॥
आगत्य च पुनर्द्वारं प्रत्युत्थानेन साधुना।
स्वागतेनाग्नयस्तुष्टा भवन्ति गृहमेधिनाम् ॥९५॥
आसनेन तु दत्तेन प्रीतो भवति देवराट्।
पादशौचेन पितरः प्रीतिमायान्ति तस्य च ॥९६॥
अन्नाद्येन च दत्तेन तृप्यतीह प्रजापतिः।
तस्मादतिथये कार्यं पूजनं गृहमेधिना ॥९७॥

इसके बाद जितनी देरमें गौ दुही जाती है, उतनी देरतक द्वारपर अतिथिके आनेकी प्रतीक्षा करे। यदि कई अतिथि आ जायँ तो उनमेंसे जिसे पहले कभी न देखा हो, उसका सम्मान सबसे पहले करना चाहिये। द्वारपर आकर अतिथिकी खड़े होकर भलीभाँति अगवानी करनेसे गृहस्थके ऊपर दक्षिण, गार्हपत्य और आहवनीय— तीनों अग्नि प्रसन्न होते हैं; आसन देनेसे देवराज इन्द्रकी प्रसन्नता होती है, अतिथिके पैर धोनेसे उस गृहस्थके पितृगण तृप्त होते हैं, अन्न आदि भोज्य पदार्थ अर्पण करनेसे प्रजापति प्रसन्न होते हैं। इसलिये गृहस्थ पुरुषको चाहिये कि वह अतिथिका पूजन करे ॥ ९४—९७ ॥

भक्त्या च भक्तिमान्नित्यं विष्णुमभ्यर्च्य चिन्तयेत्।
भिक्षां च भिक्षवे दद्यात्परिव्राड्ब्रह्मचारिणे ॥९८॥
आकल्पितान्नादुद्धृत्य सर्वव्यञ्जनसंयुताम्।
दद्याच्च मनसा नित्यं भिक्षां भिक्षोः प्रयत्नतः ॥९९॥
अकृते वैश्वदेवे तु भिक्षौ भिक्षार्थमागते।
अवश्यमेव दातव्यं स्वर्गसोपानकारकम् ॥१००॥
उद्धृत्य वैश्वदेवान्नं भिक्षां दत्त्वा विसर्जयेत्।
वैश्वदेवाकृतं दोषं शक्तो भिक्षुर्व्यपोहितुम् ॥१०१॥
सुवासिनीः कुमारीश्च भोजयित्वाऽऽतुरानपि।
बालवृद्धांस्ततः शेषं स्वयं भुञ्जीत वै गृही ॥१०२॥

इसके पश्चात् भक्तिमान् पुरुष प्रतिदिन भगवान् विष्णुकी भक्तिपूर्वक पूजा करके उनका चिन्तन करे। फिर संन्यासी, विरक्त एवं ब्रह्मचारीको भिक्षा दे। सब प्रकारसे तैयार किये हुए अन्नमेंसे समस्त व्यञ्जनोंसे युक्त कुछ अन्न निकालकर प्रतिदिन यत्नपूर्वक भिक्षु (संन्यासी)को देना चाहिये। बलिवैश्वदेव करनेके पहले भी यदि भिक्षु भिक्षाके लिये आ जाय तो उसे अवश्य भिक्षा देनी चाहिये; क्योंकि यह दान स्वर्गमें जानेके लिये सीढ़ीका काम देता है। विश्वेदेवसम्बन्धी अन्नमेंसे लेकर भिक्षुको भिक्षा देकर उसे विदा करे। वैश्वदेव कर्म न करनेके दोषको वह भिक्षु दूर कर सकता है। फिर सुवासिनी (सुहागिन) और कुमारी कन्याओं तथा रोगी व्यक्तियोंको और बालकों एवं वृद्धोंको पहले भोजन कराके उनसे बचे हुए अन्नको गृहस्थ पुरुष स्वयं भोजन करे ॥ ९८—१०२ ॥

प्राङ्मुखोदङ्मुखो वापि मौनी च मितभाषणः।
अन्नं पूर्वं नमस्कृत्य प्रहृष्टेनान्तरात्मना ॥१०३॥
पञ्च प्राणाहुतीः कुर्यात्स मन्त्रेण पृथक् पृथक्।
ततः स्वादुकरं चान्नं भुञ्जीत सुसमाहितः ॥१०४॥
आचम्य देवतामिष्टां संस्मरेदुदरं स्पृशन्।
इतिहासपुराणाभ्यां कंचित्कालं नयेद्बुधः ॥१०५॥
ततः संध्यामुपासीत बहिर्गत्वा विधानतः।
कृतहोमश्च भुञ्जीत रात्रावतिथिमर्चयेत् ॥१०६॥
सायं प्रातर्द्विजातीनामशनं श्रुतिचोदितम्।
नान्तरा भोजनं कुर्यादग्निहोत्रसमो विधिः ॥१०७॥

भोजन करते समय पूर्व या उत्तरकी ओर मुँह करके बैठे और मौन रहे अथवा कम बोले। भोजनसे पहले प्रसन्नचित्तसे अन्नको नमस्कार करके पृथक्-पृथक् पाँच प्राणवायुओंके नाम-मन्त्रसे अर्थात् 'ॐ प्राणाय स्वाहा, ॐ अपानाय स्वाहा, ॐ व्यानाय स्वाहा, ॐ उदानाय स्वाहा, 'ॐ समानाय स्वाहा'—इस प्रकार उच्चारण करते हुए पाँच बार प्राणाग्निहोत्र करे। इसके

बाद एकाग्रचित्त होकर उस स्वादिष्ट अन्नको स्वयं भोजन करे। भोजनके बाद मुँह-हाथ धो, आचमन (कुल्ला) करके, अपने उदरका स्पर्श करते हुए इष्टदेवका स्मरण करे। फिर विद्वान् पुरुष इतिहास-पुराणोंके अध्ययनमें कुछ समय व्यतीत करे। तदनन्तर सायंकाल आनेपर बाहर (नदी या जलाशयके तटपर) जाकर विधिपूर्वक संध्योपासन करे। पुनः रात्रिकालमें हवन करके अतिथि-सत्कारके पश्चात् भोजन करे। द्विजातियोंके लिये प्रातः और सायं—दो ही समय भोजन करना वेदविहित है; इसके बीचमें भोजन नहीं करना चाहिये। जैसे अग्निहोत्र प्रातः और सायंकालमें किया जाता है, वैसे ही दो ही समय भोजनकी भी विधि है॥ १०३—१०७॥

शिष्यानध्यापयेत्तद्वदनध्यायं विवर्जयेत्।
स्मृत्युक्तान् सकलान् पूर्वपुराणोक्तानपि द्विजः॥१०८॥
महानवम्यां द्वादश्यां भरण्यामपि चैव हि।
तथाक्षय्यतृतीयायां शिष्यान्नाध्यापयेद्बुधः॥१०९॥
माघमासे तु सप्तम्यां रथ्यामध्ययनं त्यजेत्।
अध्यापनमथाभ्यज्य स्नानकाले विवर्जयेत्॥११०॥

इसके अतिरिक्त विद्वान् द्विजको चाहिये कि वह प्रतिदिन शिष्योंको पढ़ाये, परंतु अध्ययनके लिये वर्जित समयका त्याग करे। स्मृतिमें बताये हुए तथा पहलेके पुराणोंमें वर्णित सम्पूर्ण अनध्याय-कालको त्याग दे। महानवमी (आश्विन शुक्ला नवमी) और द्वादशी तिथि, भरणी नक्षत्र और अक्षयतृतीयामें विद्वान् पुरुष शिष्योंको न पढ़ाये। माघ मासकी सप्तमीको अध्ययन न करे, सड़कपर चलते समय और उबटन लगाकर स्नान करते समय भी अध्ययनका त्याग करे॥ १०८—११०॥

दानं च विधिना देयं गृहस्थेन हितैषिणा।
हिरण्यदानं गोदानं भूमिदानं विशेषतः॥१११॥
एतानि यः प्रयच्छेत श्रोत्रियेभ्यो द्विजोत्तमः।
सर्वपापविनिर्मुक्तः स्वर्गलोके महीयते॥११२॥
मङ्गलाचारयुक्तश्च शुचिः श्रद्धापरो गृही।
श्राद्धं च श्रद्धया कुर्यात्स याति ब्रह्मणः पदम्॥११३॥
जातावुत्कर्षमायाति नरसिंहप्रसादतः।
स तस्मान्मुक्तिमाप्नोति ब्रह्मणा सह सत्तमाः॥११४॥
एवं हि विप्राः कथितो मया वः
समासतः शाश्वतधर्मराशिः।
सम्यग्गृहस्थस्य सतो हि धर्मं
कुर्वन् प्रयत्नाद्धरिमेति मुक्तः॥११५॥

इति श्रीनरसिंहपुराणे गृहस्थधर्मो नामाष्टपञ्चाशोऽध्यायः॥५८॥

अपना हित चाहनेवाले गृहस्थको चाहिये कि विधिपूर्वक दान करे। विशेषतः सुवर्णदान, गोदान और भूमिदान करे। जो द्विजश्रेष्ठ सुवर्ण आदि पूर्वोक्त वस्तुएँ श्रोत्रिय ब्राह्मणोंको दानमें देता है, वह सब पापोंसे मुक्त होकर स्वर्गलोकमें सम्मानित होता है। जो गृहस्थ शुभाचरणोंसे युक्त, पवित्र और श्रद्धालु रहकर श्रद्धापूर्वक श्राद्ध करता है, वह ब्रह्मलोकको प्राप्त होता है। वह भगवान् नरसिंहकी कृपासे जातिमें उत्कर्ष प्राप्त करता है और सत्तमो! ब्रह्माजीके साथ ही वह मुक्त हो जाता है। विप्रगण! इस प्रकार मैंने आपलोगोंसे यह सनातन धर्मसमूहका संक्षेपसे वर्णन किया। जो पुरुष सद्गृहस्थके उक्त धर्मका भलीभाँति प्रयत्नपूर्वक पालन करता है, वह मुक्त होकर भगवान् श्रीहरिको प्राप्त करता है॥ १११—११५॥

इस प्रकार श्रीनरसिंहपुराणमें 'गृहस्थधर्म' नामक अट्ठावनवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ५८॥

उनसठवाँ अध्याय

वानप्रस्थ-धर्म

हारीत उवाच

अतः परं प्रवक्ष्यामि वानप्रस्थस्य लक्षणम्।
धर्ममग्र्यं महाभागाः कथ्यमानं निबोधत॥ १॥

श्रीहारीत मुनि बोले—महाभागगण! इसके बाद मैं वानप्रस्थका लक्षण और श्रेष्ठ धर्म बताऊँगा; आपलोग मेरे द्वारा बताये जानेवाले उस धर्मको सुनें॥ १॥

गृहस्थः पुत्रपौत्रादीन्दृष्ट्वा पलितमात्मनः ।
स्वभार्यां तनये स्थाप्य स्वशिष्यैः प्रविशेद्वनम् ॥ २ ॥
जटाकलापचीराणि नखगात्ररुहाणि वा ।
धारयञ्जुहुयादग्नौ वैतानविधिना स्थितः ॥ ३ ॥
भूतपर्णैर्मृत्सम्भूतैर्नीवाराद्यैरतन्द्रितः ।
कंदमूलफलैर्वापि कुर्यान्नित्यक्रियां बुधः ॥ ४ ॥
त्रिकालं स्नानयुक्तस्तु कुर्यात्तीव्रं तपः सदा ।
पक्षे गते वा अश्नीयान्मासान्ते वा पराकव्रत् ॥ ५ ॥
चतुःकालेऽपि चाश्नीयात्कालेऽप्युत तथाष्टमे ।
षष्ठाह्नकाले ह्यथवा अथवा वायुभक्षकः ॥ ६ ॥

गृहस्थ पुरुष जब यह देख ले कि मेरे पुत्र-पौत्र हो गये हैं तथा बाल भी पक गये हैं, तब वह अपनी भार्याको पुत्रोंकी देख-रेखमें सौंपकर स्वयं अपने शिष्योंके साथ वनमें प्रवेश करे। जटा, चीर (वल्कल) वस्त्र, नख, लोम आदि धारण किये हुए ही यज्ञोक्त विधिसे अग्निमें हवन करे। विद्वान् पुरुषको चाहिये कि पत्तोंवाले साग आदिसे या धरतीसे स्वयं उत्पन्न हुए नीवार आदिसे अथवा कंद-मूल-फल आदिसे प्रतिदिन आहारक्रियाका निर्वाह करे। प्रातः, मध्याह्न और सायं—तीनों कालोंमें स्नान करके सदा कठोर तपस्या करे। 'पराक' आदि व्रतोंका पालन करता हुआ वानप्रस्थ पुरुष एक पक्ष या एक मासके बाद भोजन करे अथवा दिन-रातके चौथे या आठवें भागमें एक बार भोजन करे। अथवा छठे दिन कुछ भोजन करे या वायु पीकर ही रहे ॥ २–६ ॥

घर्मे पञ्चाग्निमध्यस्थो धारावर्षासु वै नयेत् ।
हैमन्तिके जले स्थित्वा नयेत्कालं तपश्चरन् ॥ ७ ॥
एवं स्वकर्मभोगेन कृत्वा शुद्धिमथात्मनः ।
अग्निं चात्मनि वै कृत्वा व्रजेद्वाथोत्तरां दिशम् ॥ ८ ॥
आदेहपाताद्वनगो मौनमास्थाय तापसः ।
स्मरन्नतीन्द्रियं ब्रह्म ब्रह्मलोके महीयते ॥ ९ ॥
तपो हि यः सेवति काननस्थो
वसेन्महत्सत्त्वसमाधियुक्तः ।
विमुक्तपापो हि मनःप्रशान्तः
प्रयाति विष्णोः सदनं द्विजेन्द्रः ॥ १० ॥

इति श्रीनरसिंहपुराणे वानप्रस्थधर्मो नाम एकोनषष्टितमोऽध्यायः ॥ ५९ ॥

ग्रीष्म-कालमें पञ्चाग्निके मध्य बैठे, वर्षाकालमें धारावृष्टि होनेपर बाहर आकाशके ही नीचे समय व्यतीत करे और हेमन्त ऋतुमें तप करते हुए वह जलमें खड़ा रहकर समय बिताये। इस प्रकार कर्मभोगद्वारा आत्मशुद्धि करके, अग्निको भावनाद्वारा अन्तःकरणमें स्थापितकर उत्तर दिशाको चला जाय। वह तपस्वी देहपात होनेतक वनमें मौन रहकर इन्द्रियातीत ब्रह्मका स्मरण करता हुआ देहत्यागकर ब्रह्मलोकमें पूजित होता है। जो द्विजश्रेष्ठ वनवासी (वानप्रस्थ) होकर महान् सत्त्वगुण और समाधिसे युक्त हो तपका अनुष्ठान करता है, वह पाप-रहित और प्रशान्तचित्त होकर विष्णुधामको प्राप्त होता है ॥ ७–१० ॥

इस प्रकार श्रीनरसिंहपुराणमें 'वानप्रस्थधर्म' नामक उनसठवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ५९ ॥

साठवाँ अध्याय

यतिधर्म

हारीत उवाच

अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि यतिधर्ममनुत्तमम् ।
श्रद्धया यदनुष्ठाय यतिर्मुच्येत बन्धनात् ॥ १ ॥
एवं वनाश्रमे तिष्ठंस्तपसा दग्धकिल्बिषः ।
चतुर्थमाश्रमं गच्छेत्संन्यस्य विधिना द्विजः ॥ २ ॥
दिव्यं ऋषिभ्यो देवेभ्यः स्वपितृभ्यश्च यत्नतः ।
दत्त्वा श्राद्धमृषिभ्यश्च मनुजेभ्यस्तथाऽऽत्मने ॥ ३ ॥
इष्टिं वैश्वानरीं कृत्वा प्राजापत्यमथापि वा ।
अग्निं स्वात्मनि संस्थाप्य मन्त्रवत्प्रव्रजेत् पुनः ॥ ४ ॥
ततः प्रभृति पुत्रादौ सुखलोभादि वर्जयेत् ।
दद्याच्च भूमावुदकं सर्वभूताभयंकरम् ॥ ५ ॥
त्रिदण्डं वैणवं सौम्यं सत्वचं समपर्वकम् ।

वेष्टितं कृष्णगोवालरज्ज्वा च चतुरङ्गुलम् ॥ ६ ॥
ग्रन्थिभिर्वा त्रिभिर्युक्तं जलपूतं च धारयेत् ।
गृह्णीयाद्दक्षिणे हस्ते मन्त्रेणैव तु मन्त्रवित् ॥ ७ ॥

श्रीहारीत मुनि कहते हैं—इसके बाद अब मैं संन्यासियोंका सर्वोत्तम धर्म बताऊँगा, जिसका श्रद्धापूर्वक अनुष्ठान करके संन्यासी भवबन्धनसे मुक्त हो जाता है। द्विजको चाहिये कि पूर्वोक्त रीतिसे वानप्रस्थ आश्रममें रहते हुए तपस्याद्वारा पापोंको भस्म करके, विधिपूर्वक संन्यास ले चौथे आश्रममें प्रवेश करे। पहले यत्नपूर्वक देवताओं, ऋषियों और अपने पितरोंके लिये दिव्य श्राद्ध-सामग्रीका दान करे; इसी प्रकार ऋषियों, मनुष्यों तथा अपने लिये भी श्राद्धीय वस्तुका दान करे। फिर वैश्वानर अथवा प्राजापत्य याग करके, मन्त्र-पाठपूर्वक अपने अन्तःकरणमें अग्निस्थापन करके, संन्यासी हो, वहाँसे चला जाय। उस दिनसे पुत्र आदिके प्रति आसक्तिको और सुख-लोभ आदिको त्याग दे। पृथ्वीपर समस्त प्राणियोंको अभय देनेके निमित्त जलकी अञ्जलि दे। वेणु (बाँस) का बना हुआ त्रिदण्ड धारण करे, जो सुन्दर और त्वचायुक्त हो, उसके पोर बराबर हों, काली गौके बालोंकी रस्सीसे वह चार अंगुलतक लपेटा गया हो। अथवा वह दण्ड तीन गाँठोंसे युक्त हो, उसे जलसे पवित्र करके धारण करे। मन्त्रवेत्ता पुरुषको चाहिये कि वह मन्त्रपाठ-पूर्वक ही उस दण्डको दायें हाथमें ग्रहण करे ॥ १–७ ॥

कौपीनाच्छादनं वासः कुन्थां शीतनिवारिणीम् ।
पादुके चापि गृह्णीयात्कुर्यान्नान्यस्य संग्रहम् ॥ ८ ॥
एतानि तस्य लिङ्गानि यतेः प्रोक्तानि धर्मतः ।
संगृह्य कृतसंन्यासो गत्वा तीर्थमनुत्तमम् ॥ ९ ॥
स्नात्वा ह्याचम्य विधिवज्जलयुक्तांशुकेन वै ।
वारिणा तर्पयित्वा तु मन्त्रवद्भास्करं नमेत् ॥ १० ॥
आसीनः प्राङ्मुखो मौनी प्राणायामत्रयं चरेत् ।
गायत्रीं च यथाशक्ति जप्त्वा ध्यायेत्परं पदम् ॥ ११ ॥
स्थित्यर्थमात्मनो नित्यं भिक्षाटनमथाचरेत् ।
सायाह्नकाले विप्राणां गृहाणि विचरेद्यतिः ॥ १२ ॥

कौपीन (लँगोटी), चादर, जाड़ा दूर करनेवाली एक गुदड़ी तथा खड़ाऊँ—इन्हीं वस्तुओंको अपने पास रक्खे, अन्य वस्तुओंका संग्रह न करे। संन्यासीके ये ही चिह्न बताये गये हैं। इन वस्तुओंका धर्मतः संग्रह करके संन्यासी पुरुष उत्तम तीर्थमें जा, स्नान करके विधिवत् आचमन करे। स्नानके बाद भीगे वस्त्रके जलसे सूर्यदेवका मन्त्रपाठपूर्वक तर्पण करके उन्हें प्रणाम करे। फिर पूर्वाभिमुख बैठकर, मौन हो, तीन प्राणायाम—पूरक, कुम्भक और रेचक करे तथा यथाशक्ति गायत्रीका जप करके परब्रह्मका ध्यान करे। शरीरकी स्थिति (रक्षा) के लिये प्रतिदिन भिक्षाटन करे। यतिको चाहिये कि संध्याके समय ब्राह्मणोंके घरोंपर भिक्षाके लिये भ्रमण करे ॥ ८–१२ ॥

स्यादर्थी यावतान्नेन तावद्भैक्षं समाचरेत् ।
ततो निवृत्त्य तत्पात्रमभ्युक्ष्याचम्य संयमी ॥ १३ ॥
सूर्यादिदैवतेभ्यो हि दत्त्वान्नं प्रोक्ष्य वारिणा ।
भुञ्जीत पर्णपुटके पात्रे वा वाग्यतो यतिः ॥ १४ ॥
वटकाश्वत्थपत्रेषु कुम्भीतिन्दुकपत्रयोः ।
कोविदारकरञ्जेषु न भुञ्जीत कदाचन ॥ १५ ॥
भुक्त्वाऽऽचम्य निरुद्धासुरुपतिष्ठेत भास्करम् ।
जपध्यानेतिहासैस्तु दिनशेषं नयेद्यतिः ॥ १६ ॥
पलाशाः सर्व उच्यन्ते यतयः कांस्यभोजिनः ।
कांस्यस्यैव तु यत्पात्रं गृहस्थस्य तथैव च ।
कांस्यभोजी यतिः सर्वं प्राप्नुयात्किल्बिषं पुनः ।
भुक्तपात्रे यतिर्नित्यं भक्षयेन्मन्त्रपूर्वकम् ।
न दुष्येत्तस्य तत्पात्रं यज्ञेषु चमसा इव ।
कृतसंध्यस्ततो रात्रिं नयेद्देवगृहादिषु ।
हृत्पुण्डरीकनिलये ध्यायन्नारायणं हरिम् ।
तत्पदं समवाप्नोति यत्प्राप्य न निवर्तते ॥ १७ ॥

इति श्रीनरसिंहपुराणे यतिधर्मो नाम षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६० ॥

जितने अन्नकी उसे उस समय आवश्यकता हो, उतनी ही भिक्षा माँगे। फिर लौटकर उस भिक्षापात्रपर जलके छींटे देकर संयमी यति स्वयं भी आचमन करे। इसके बाद उस अन्नपर भी जलके छींटे देकर, उसे सूर्य आदि देवताओंको निवेदन कर, पत्तेके दोने या पत्तलमें रखकर, वह संन्यासी पुरुष मौनभावसे भोजन करे। वट, पीपल, जलकुम्भी और तिन्दुकके पत्तोंपर तथा कोविदार और करंजके पत्तोंपर भी कभी भोजन न करे। भोजन समाप्त करके मुँह-हाथ धो, आचमन करके, प्राणवायुको रोक, सूर्यदेवको प्रणाम करे। नैत्यिक नियमोंके बाद जितना

दिन शेष रहे, उसे संन्यासी पुरुष जप, ध्यान और इतिहास-पाठ आदिके द्वारा व्यतीत करे। काँसेके पात्रमें भोजन करनेवाले सभी यति 'पलाश' कहलाते हैं। यदि संन्यासी काँसेका पात्र रखे तो वह गृहस्थके ही समान है; क्योंकि गृहस्थका भी तो वैसा ही पात्र होता है। काँसेके पात्रमें भोजन करनेवाला यति समस्त पापोंका भागी होता है। यति जिस काष्ठ या मिट्टी आदिके पात्रमें एक बार भोजन कर चुका है, उसे धोकर पुनः उसमें मन्त्रपाठपूर्वक भोजन कर सकता है; उसका वह पात्र यज्ञ-पात्रोंके समान कभी दूषित नहीं होता। इसके बाद यथासमय संध्याकालिक नियमोंका पालन करके देवमन्दिर आदिमें रात्रि व्यतीत करे और अपने हृदय-कमलके आसनपर भगवान् नारायणका ध्यान करे। यों करनेसे वह यति उस परमपदको प्राप्त होता है, जहाँ जाकर पुनः लौटना नहीं पड़ता ॥ १३--१७ ॥

इस प्रकार श्रीनरसिंहपुराणमें 'यतिधर्मका वर्णन' नामक साठवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ६० ॥

इकसठवाँ अध्याय

योगसार

हारीत उवाच

वर्णानामाश्रमाणां च कथितं धर्मलक्षणम्।
यतः स्वर्गापवर्गौ तु प्राप्नुयुस्ते द्विजादयः ॥ १ ॥
योगशास्त्रस्य वक्ष्यामि संक्षेपात्सारमुत्तमम्।
यस्याभ्यासबलाद्यान्ति मोक्षं चेह मुमुक्षवः ॥ २ ॥

श्रीहारीत मुनि कहते हैं—मुनियो! मैंने चारों वर्णों और चारों आश्रमोंके धर्मका स्वरूप बतलाया, जिसके पालनसे उपर्युक्त ब्राह्मणादि वर्णके लोग स्वर्ग और मोक्ष भी प्राप्त कर सकते हैं। अब मैं संक्षेपमें योगशास्त्रका उत्तम सारांश वर्णन करूँगा, जिसके अभ्याससे मुमुक्षु पुरुष इसी जन्ममें मोक्षको प्राप्त हो जाते हैं ॥ १-२ ॥

योगाभ्यासरतस्येह नश्येयुः पातकानि च।
तस्माद्योगपरो भूत्वा ध्यायेन्नित्यं क्रियान्तरे ॥ ३ ॥
प्राणायामेन वचनं प्रत्याहारेण चेन्द्रियम्।
धारणाभिर्वशीकृत्य पुनर्दुर्धर्षणं मनः ॥ ४ ॥
एकं कारणमानन्दबोधं च तमनामयम्।
सूक्ष्मात्सूक्ष्मतरं ध्यायेज्जगदाधारमच्युतम् ॥ ५ ॥
आत्मानमरविन्दस्थं तप्तचामीकरप्रभम्।
रहस्येकान्तमासीत ध्यायेदात्महृदि स्थितम् ॥ ६ ॥
यः सर्वप्राणचित्तज्ञो यः सर्वेषां हृदि स्थितः।
यश्च सर्वजनैर्ज्ञेयः सोऽहमस्मीति चिन्तयेत् ॥ ७ ॥
आत्मलाभसुखं यावत्तावद्ध्यानमुदाहृतम्।
श्रुतिस्मृत्युदितं कर्म तत्तदूर्ध्वं समाचरेत् ॥ ८ ॥

योगाभ्यासपरायण पुरुषके समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं, अतः कर्तव्य कर्मसे अवकाश मिलनेपर प्रतिदिन योगनिष्ठ होकर ध्यान करना चाहिये। पहले प्राणायामके द्वारा वाणीको, प्रत्याहारसे इन्द्रियोंको और धारणाके द्वारा दुर्धर्ष मनको वशमें करे। तत्पश्चात् जो सबके एकमात्र कारण, ज्ञानानन्दस्वरूप, अनामय और सूक्ष्मसे भी सूक्ष्म तत्त्व हैं, उन जगदाधार अच्युतका ध्यान करे। एकान्त स्थानमें अकेले बैठकर अपने हृदयमें कमलके आसनपर विराजमान, तपाये हुए सुवर्णके समान कान्तिमान् अपने आत्मस्वरूप भगवान्का चिन्तन करे। जो सबके प्राणों और चित्तकी चेष्टाओंको जानता है, सभीके हृदयमें विराजमान है तथा समस्त प्राणियोंद्वारा जाननेयोग्य है—वह परमात्मा मैं ही हूँ, ऐसी भावना करे। जबतक आत्मसाक्षात्कारजन्य सुखकी प्रतीति हो, तभीतक ध्यान करना आवश्यक बताया गया है। उसके उपरान्त श्रौत और स्मार्त कर्मोंका आचरण सुचारुरूपसे करे ॥ ३--८ ॥

यथाश्वा रथहीनाश्च रथाश्चाश्वैर्विना यथा।
एवं तपश्च विद्या च उभावपि तपस्विनः ॥ ९ ॥
यथान्नं मधुसंयुक्तं मधु चान्नेन संयुतम्।
एवं तपश्च विद्या च संयुक्ते भेषजं महत् ॥ १० ॥
द्वाभ्यामेव हि पक्षाभ्यां यथा वै पक्षिणां गतिः।
तथैव ज्ञानकर्मभ्यां प्राप्यते ब्रह्म शाश्वतम् ॥ ११ ॥

विद्यातपोभ्यां सम्पन्नो ब्राह्मणो योगतत्परः ।
देहद्वन्द्वं विहायाशु मुक्तो भवति बन्धनात् ॥१२॥
न देवयानमार्गेण यावत्प्राप्तं परं पदम् ।
न तावद्देहलिङ्गस्य विनाशो विद्यते क्वचित् ॥१३॥
मया वः कथितः सर्वो वर्णाश्रमविभागशः ।
संक्षेपेण द्विजश्रेष्ठा धर्मस्तेषां सनातनः ॥१४॥

जैसे रथके बिना घोड़े और घोड़ोंके बिना रथ उपयोगी नहीं हो सकते, उसी प्रकार तपस्वीके तप और विद्याकी सिद्धि भी एक-दूसरेके आश्रित हैं । जिस प्रकार अन्न मधु (चीनी आदि) से युक्त होनेपर मीठा होता है और मधु भी अन्नके साथ ही सुस्वादु प्रतीत होता है, उसी प्रकार तप और विद्या--दोनों साथ रहकर ही भवरोगके महान् औषध होते हैं । जिस प्रकार पक्षी दोनों पंखोंसे ही उड़ सकते हैं, उसी प्रकार ज्ञान और कर्म—दोनोंसे ही सनातन ब्रह्मकी प्राप्ति हो सकती है । विद्या और तपसे सम्पन्न योग-तत्पर ब्राह्मण दैहिक द्वन्द्वोंको शीघ्र ही त्यागकर भवबन्धनसे मुक्त हो जाता है । जबतक देवयानमार्गसे जाकर जीवको परमपदकी प्राप्ति नहीं होती, तबतक लिङ्गशरीरका विनाश कभी हो नहीं सकता । द्विजवरो ! इस प्रकार वर्णों और आश्रमोंके विभागपूर्वक मैंने उन आश्रमोंके सम्पूर्ण सनातन धर्मका संक्षेपसे वर्णन कर दिया ॥ ९–१४ ॥

मार्कण्डेय उवाच

श्रुत्वैवमृषयो धर्मं स्वर्गमोक्षफलप्रदम् ।
प्रणम्य तमृषिं जग्मुर्मुदितास्ते स्वमालयम् ॥१५॥
धर्मशास्त्रमिदं यस्तु हारीतमुखनिस्सृतम् ।
श्रुत्वा च कुरुते धर्मं स याति परमां गतिम् ॥१६॥
मुखजस्य तु यत्कर्म कर्म यद्बाहुजस्य तु ।
ऊरुजस्य तु यत्कर्म पादजस्य तथा नृप ॥१७॥
स्वं स्वं कर्म प्रकुर्वाणा विप्राद्या यान्ति सद्गतिम् ।
अन्यथा वर्तमानो हि सद्यः पतति यात्यधः ॥१८॥
यस्य येऽभिहिता धर्माः स तु तैस्तैः प्रतिष्ठितः ।
तस्मात्स्वधर्मं कुर्वीत नित्यमेवमनापदि ॥१९॥
चतुर्वर्णाश्च राजेन्द्र चत्वारश्चापि चाश्रमाः ।
स्वधर्मं येऽनुतिष्ठन्ति ते यान्ति परमां गतिम् ॥२०॥
स्वधर्मेण यथा नृणां नरसिंहः प्रतुष्यति ।
वर्णधर्मानुसारेण नरसिंहं तथार्चयेत् ॥२१॥

उत्पन्नवैराग्यबलेन योगाद्
ध्यायेत्परं ब्रह्म सदा क्रियावान् ।
सत्यात्मकं चित्सुखरूपमाद्यं
विहाय देहं पदमेति विष्णोः ॥२२॥

*इति श्रीनरसिंहपुराणे योगाध्यायो नामैक-
षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६१ ॥*

मार्कण्डेयजी कहते हैं—इस प्रकार हारीत मुनिके मुखसे स्वर्ग और मोक्षरूप फलको देनेवाले धर्मका वर्णन सुनकर वे ऋषिगण उन मुनीश्वरको प्रणाम कर प्रसन्नतापूर्वक अपने-अपने स्थानको चले गये । जो भी हारीत मुनिके मुखसे निर्गत इस धर्मशास्त्रका श्रवण करके इसके अनुसार आचरण करता है वह परमगतिको प्राप्त होता है । नरेश्वर ! ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रके जो-जो कर्म बताये गये हैं, उन-उन अपने-अपने वर्णोचित कर्मोंका पालन करनेवाले ब्राह्मण आदि सद्गतिको प्राप्त होते हैं; इसके विपरीत आचरण करनेवाला पुरुष तत्काल नीचे गिर जाता है । जिसके लिये जो धर्म बताये गये हैं, वह पुरुष उन्हीं धर्मोंसे प्रतिष्ठित होता है । इसलिये आपत्तिकालके अतिरिक्त सदा ही अपने धर्मका पालन करना चाहिये । राजेन्द्र ! चार ही वर्ण और चार ही आश्रम हैं । जो लोग अपने वर्ण एवं आश्रमके उचित धर्मका पूर्णतया पालन करते हैं, वे परम गतिको प्राप्त होते हैं । भगवान् नरसिंह जिस प्रकार स्वधर्मका आचरण करनेसे मनुष्यपर प्रसन्न होते हैं, वैसे दूसरे प्रकारसे नहीं; इसलिये वर्णधर्मके अनुसार भगवान् नरसिंहका पूजन करना चाहिये । जो पुरुष स्वकर्ममें तत्पर रहकर उत्पन्न हुए वैराग्यके बलसे योगाभ्यासपूर्वक सदा सच्चिदानन्दस्वरूप अनादि ब्रह्मका ध्यान करता है, वह देह त्यागकर साक्षात् श्रीविष्णुपदको प्राप्त होता है ॥ १५—२२ ॥

इस प्रकार श्रीनरसिंहपुराणमें 'योगाध्याय' नामक इकसठवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ६१ ॥

बासठवाँ अध्याय

श्रीविष्णुपूजनके वैदिक मन्त्र और स्थान

श्रीमार्कण्डेय उवाच

वर्णानामाश्रमाणां च कथितं लक्षणं तव ।
भूयः कथय राजेन्द्र शुश्रूषा तव का नृप ॥ १ ॥

श्रीमार्कण्डेयजी कहते हैं—राजन् ! मैंने तुम्हें वर्णों और आश्रमोंका स्वरूप बताया । राजेन्द्र ! अब कहो, तुम्हारे मनमें क्या सुननेकी इच्छा है ॥ १ ॥

सहस्रानीक उवाच

स्नात्वा वेश्मनि देवेशमर्चयेदच्युतं त्विति ।
त्वयोक्तं मम विप्रेन्द्र तत्कथं पूजनं भवेत् ॥ २ ॥
यैर्मन्त्रैरर्च्यते विष्णुर्येषु स्थानेषु वै मुने ।
तानि स्थानानि तान्मन्त्रांस्त्वमाचक्ष्व महामुने ॥ ३ ॥

सहस्रानीक बोले—विप्रेन्द्र ! आपने बताया कि प्रतिदिन स्नान करके अपने घरमें भगवान् अच्युतका पूजन करना चाहिये । अतः वह पूजन किस प्रकार होना चाहिये ? महामुने ! जिन मन्त्रोंद्वारा और जिन आधारोंमें भगवान् विष्णुकी पूजा होती है, वे आधार और वे मन्त्र आप मुझे बताइये ॥ २-३ ॥

श्रीमार्कण्डेय उवाच

अर्चनं सम्प्रवक्ष्यामि विष्णोरमिततेजसः ।
यत्कृत्वा मुनयः सर्वे परं निर्वाणमाप्नुयुः ॥ ४ ॥
अग्नौ क्रियावतां देवो हृदि देवो मनीषिणाम् ।
प्रतिमास्वल्पबुद्धीनां योगिनां हृदये हरिः ॥ ५ ॥
अतोऽग्नौ हृदये सूर्ये स्थण्डिले प्रतिमासु च ।
एतेषु च हरेः सम्यगर्चनं मुनिभिः स्मृतम् ॥ ६ ॥
तस्य सर्वमयत्वाच्च स्थण्डिले प्रतिमासु च ।

श्रीमार्कण्डेयजीने कहा—अच्छा, मैं अमिततेजस्वी भगवान् विष्णुके पूजनकी विधि बता रहा हूँ, जिसके अनुसार पूजन करके सभी मुनिगण परम निर्वाण (मोक्ष) पदको प्राप्त हुए हैं । अग्निमें हवन करनेवालेके लिये भगवान्‌का वास अग्निमें है । ज्ञानियों और योगियोंके लिये अपने-अपने हृदयमें ही भगवान्‌की स्थिति है तथा जो थोड़ी बुद्धिवाले हैं, उनके लिये प्रतिमामें भगवान्‌का निवास है । इसलिये अग्नि, सूर्य, हृदय, स्थण्डिल (वेदी) और प्रतिमा—इन सभी आधारोंमें भगवान्‌का विधिपूर्वक पूजन मुनियोंद्वारा बताया गया है । भगवान् सर्वमय हैं, अतः स्थण्डिल और प्रतिमाओंमें भी भगवत्पूजन उत्तम है ॥ ४-६½ ॥

आनुष्टुभस्य सूक्तस्य विष्णुस्तस्य च देवता ॥ ७ ॥
पुरुषो यो जगद्बीजं ऋषिर्नारायणः स्मृतः ।
दद्यात्पुरुषसूक्तेन यः पुष्पाण्यप एव च ॥ ८ ॥
अर्चितं स्याज्जगत्सर्वं तेन वै सचराचरम् ।
आद्ययाऽऽवाहयेद्देवमृचा तु पुरुषोत्तमम् ॥ ९ ॥
द्वितीययाऽऽसनं दद्यात्पाद्यं दद्यात्तृतीयया ।
चतुर्थ्यार्घ्यः प्रदातव्यः पञ्चम्याऽऽचमनीयकम् ॥ १० ॥
षष्ठ्या स्नानं प्रकुर्वीत सप्तम्या वस्त्रमेव च ।
यज्ञोपवीतमष्टम्या नवम्या गन्धमेव च ॥ ११ ॥
दशम्या पुष्पदानं स्यादेकादश्या च धूपकम् ।
द्वादश्या च तथा दीपं त्रयोदश्यार्चनं तथा ॥ १२ ॥
चतुर्दश्या स्तुतिं कृत्वा पञ्चदश्या प्रदक्षिणम् ।
षोडश्योद्वासनं कुर्याच्छेषकर्माणि पूर्ववत् ॥ १३ ॥
स्नानं वस्त्रं च नैवेद्यं दद्यादाचमनीयकम् ।
षण्मासात्सिद्धिमाप्नोति देवदेवं समर्चयन् ॥ १४ ॥
संवत्सरेण तेनैव सायुज्यमधिगच्छति ।

अब पूजनका मन्त्र बताते हैं । शुक्ल यजुर्वेदीय रुद्राष्टाध्यायीमें जो पुरुषसूक्त है, उसका उच्चारण करते हुए भगवान्‌का पूजन करना चाहिये । पुरुषसूक्तका अनुष्टुप् छन्द है, जगत्‌के कारणभूत परम पुरुष भगवान् विष्णु देवता हैं, नारायण ऋषि हैं और भगवत्पूजनमें उसका विनियोग है । जो पुरुषसूक्तसे भगवान्‌को फूल और जल अर्पण करता है, उसके द्वारा सम्पूर्ण चराचर जगत् पूजित हो जाता है । पुरुषसूक्तकी पहली ऋचासे भगवान् पुरुषोत्तमका आवाहन करना चाहिये । दूसरी ऋचासे आसन और तीसरीसे पाद्य अर्पण करे । चौथी ऋचासे अर्घ्य और पाँचवींसे आचमनीय निवेदित करे । छठी ऋचासे स्नान कराये और सातवींसे वस्त्र अर्पण करे । आठवींसे यज्ञोपवीत और नवमी ऋचासे गन्ध निवेदन करे ।

दसवींसे फूल चढ़ाये और ग्यारहवीं ऋचासे धूप दे। बारहवींसे दीप और तेरहवीं ऋचासे नैवेद्य, फल, दक्षिणा आदि अन्य पूजन-सामग्री निवेदित करे। चौदहवीं ऋचासे स्तुति करके पंद्रहवींसे प्रदक्षिणा करे। अन्तमें सोलहवीं ऋचासे विसर्जन करे। पूजनके बाद शेष कर्म पहले बताये अनुसार ही पूर्ण करे। भगवान्‌के लिये स्नान, वस्त्र, नैवेद्य और आचमनीय आदि निवेदन करे। इस प्रकार देवदेव परमात्माका पूजन करनेवाला पुरुष छः महीनेमें सिद्धि प्राप्त कर लेता है। इसी क्रमसे यदि एक वर्षतक पूजन करे तो वह भक्त सायुज्य मोक्षका अधिकारी हो जाता है ॥ ७–१४½ ॥

हविषाग्नौ जले पुष्पैर्ध्यानेन हृदये हरिम् ॥१५॥
अर्चन्ति सूरयो नित्यं जपेन रविमण्डले।
आदित्यमण्डले दिव्यं देवदेवमनामयम्।
शङ्खचक्रगदापाणिं ध्यात्वा विष्णुमुपासते ॥१६॥
ध्येयः सदा सवितृमण्डलमध्यवर्ती
नारायणः सरसिजासनसंनिविष्टः।
केयूरवान्मकरकुण्डलवान् किरीटी
हारी हिरण्मयवपुर्धृतशङ्खचक्रः ॥१७॥
एतत्पठन् केवलमेव सूक्तं
दिने दिने भावितविष्णुबुद्धिः।
स सर्वपापं प्रविहाय वैष्णवं
पदं प्रयात्यच्युततुष्टिकृन्नरः ॥१८॥
पत्रेषु पुष्पेषु फलेषु तोये-
ष्वक्रीतलभ्येषु सदैव सत्सु।
भक्त्यैकलभ्ये पुरुषे पुराणे
मुक्त्यै किमर्थं क्रियते न यत्नः ॥१९॥

विद्वान् पुरुष अग्निमें आहुतिके द्वारा, जलमें पुष्पके द्वारा, हृदयमें ध्यानद्वारा और सूर्यमण्डलमें जपके द्वारा भगवान् विष्णुका पूजन करते हैं। वे भक्तजन सूर्यमण्डलमें दिव्य, अनामय, देवदेव शङ्ख-चक्र-गदाधारी भगवान् विष्णुका ध्यान करते हुए उनकी उपासना करते हैं। जो केयूर, मकराकृति कुण्डल, किरीट, हार आदि आभूषणोंसे भूषित हो, हाथमें शङ्ख-चक्र धारण किये कमलासनपर विराजमान हैं तथा जिनके शरीरकी कान्ति सुवर्णके समान देदीप्यमान है, सूर्यमण्डलके मध्यमें विराजमान उन भगवान् नारायणका सदा ध्यान करे। जो प्रतिदिन बुद्धिमें भगवान् विष्णुकी भावना करके केवल इस 'ध्येयः सदा०' इत्यादि सूक्तका पाठमात्र ही कर लेता है, वह भगवान् विष्णुको संतुष्ट करनेवाला पुरुष सब पापोंसे मुक्त हो विष्णुधामको पहुँच जाता है। बिना मूल्यके ही मिलनेवाले पूजनोपचार —पत्र, पुष्प, फल और जलके सदा रहते हुए तथा एकमात्र भक्तिसे ही सुलभ होनेवाले भगवान् पुराण-पुरुषके होते हुए मनुष्यद्वारा मुक्तिके लिये प्रयत्न क्यों नहीं किया जाता? अर्थात् उक्त सुलभ उपचारोंसे भगवान्‌का पूजन करके लोग मोक्ष पानेके लिये यत्न क्यों नहीं करते? ॥ १५–१९ ॥

इत्येवमुक्तः पुरुषस्य विष्णो-
रर्चाविधिस्तेऽद्य मया नृपेन्द्र।
अनेन नित्यं कुरु विष्णुपूजां
प्राप्तुं तदिष्टं यदि वैष्णवं पदम् ॥२०॥

इति श्रीनरसिंहपुराणे विष्णोरर्चाविधिर्नाम द्विषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६२ ॥

नृपवर! इस प्रकार यह परमपुरुष भगवान् विष्णुकी पूजा-विधि आज मैंने तुम्हें बतायी है। यदि तुम्हें वैष्णव-पद प्राप्त करनेकी इच्छा हो तो इस विधिके द्वारा सदा भगवान् विष्णुकी पूजा करो ॥ २० ॥

इस प्रकार श्रीनरसिंहपुराणमें 'भगवान् विष्णुकी पूजा-विधि' नामक बासठवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ६२ ॥

तिरसठवाँ अध्याय

अष्टाक्षर मन्त्रके प्रभावसे इन्द्रका स्त्रीयोनिसे उद्धार

सहस्रानीक उवाच

सत्यमुक्तं त्वया ब्रह्मन् वैदिकः परमो विधिः।
विष्णोर्देवातिदेवस्य पूजनं प्रति मेऽधुना ॥ १ ॥
अनेन विधिना ब्रह्मन् पूज्यते मधुसूदनः।
वेदज्ञैरेव नान्यैस्तु तस्मात्सर्वहितं वद ॥ २ ॥

सहस्रानीक बोले—ब्रह्मन्! इस समय आपने

देवदेवेश्वर भगवान् विष्णुके पूजनकी यह उत्तम वैदिक विधि बतायी, वह बिल्कुल ठीक है; परंतु ब्रह्मन् ! इस विधिसे तो केवल वेदज्ञ पुरुष ही मधुसूदनकी पूजा कर सकते हैं, दूसरे लोग नहीं; इसलिये आप ऐसी कोई विधि बताइये, जो सबके लिये उपयोगी हो ॥ १-२ ॥

श्रीमार्कण्डेय उवाच

अष्टाक्षरेण देवेशं नरसिंहमनामयम् ।
गन्धपुष्पादिभिर्नित्यमर्चयेदच्युतं नरः ॥ ३ ॥
राजन्नष्टाक्षरो मन्त्रः सर्वपापहरः परः ।
समस्तयज्ञफलदः सर्वशान्तिकरः शुभः ॥ ४ ॥
ॐ नमो नारायणाय ।
गन्धपुष्पादिसकलमनेनैव निवेदयेत् ।
अनेनाभ्यर्चितो देवः प्रीतो भवति तत्क्षणात् ॥ ५ ॥
किं तस्य बहुभिर्मन्त्रैः किं तस्य बहुभिर्व्रतैः ।
ॐ नमो नारायणायेति मन्त्रः सर्वार्थसाधकः ॥ ६ ॥
इमं मन्त्रं जपेद्यस्तु शुचिर्भूत्वा समाहितः ।
सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुसायुज्यमाप्नुयात् ॥ ७ ॥

श्रीमार्कण्डेयजी बोले—मनुष्यको चाहिये कि वह अष्टाक्षर मन्त्रसे निरामय देवेश्वर भगवान् नरसिंहका गन्ध-पुष्प आदि उपचारोंद्वारा प्रतिदिन पूजन करे । राजन् ! यह अष्टाक्षर मन्त्र समस्त पापोंको हर लेनेवाला, समस्त यज्ञोंका फल देनेवाला, सब प्रकारकी शान्ति प्रदान करनेवाला एवं परम शुभ है । मन्त्र यों है—'ॐ नमो नारायणाय ।' इसी मन्त्रसे गन्ध आदि समस्त सामग्रियोंको अर्पित करे । इस मन्त्रसे पूजा करनेपर भगवान् विष्णु तत्काल प्रसन्न होते हैं । मनुष्यके लिये अन्य बहुत-से मन्त्रों और व्रतोंकी क्या आवश्यकता है । केवल 'ॐ नमो नारायणाय'—यह मन्त्र ही समस्त मनोरथोंको सिद्ध करनेवाला है । जो स्नानादिसे पवित्र होकर एकाग्रचित्तसे इस मन्त्रका जप करता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो भगवान् विष्णुके सायुज्यको प्राप्त होता है ॥ ३–७ ॥

सर्वतीर्थफलं ह्येतत् सर्वतीर्थवरं नृप ।
हरेरर्चनमव्यग्रं सर्वयज्ञफलं नृप ॥ ८ ॥
तस्मात्कुरु नृपश्रेष्ठ प्रतिमादिषु चार्चनम् ।
दानानि विप्रमुखेभ्यः प्रयच्छ विधिना नृप ।
एवं कृते नृपश्रेष्ठ नरसिंहप्रसादतः ।
प्राप्नोति वैष्णवं तेजो यत्काङ्क्षन्ति मुमुक्षवः ॥ ९ ॥
पुरा पुरंदरो राजन् स्त्रीत्वं प्राप्तोऽपधर्मतः ।
तृणबिन्दुमुनेः शापान्मुक्तो ह्यष्टाक्षराज्जपात् ॥ १० ॥

नरेश्वर ! शान्तभावसे भगवान् विष्णुका पूजन करना ही सब तीर्थों और यज्ञोंका फल है तथा सम्पूर्ण तीर्थोंसे बढ़कर पवित्र है । अतः नरेश्वर ! तुम प्रतिमा आदिमें विधिपूर्वक भगवान्‌का पूजन करो और श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको दान दो । नृप-श्रेष्ठ ! यों करनेसे भक्त पुरुष उस तेजोमय वैष्णवधामको प्राप्त होते हैं, जिसकी मुमुक्षुलोग सदा अभिलाषा किया करते हैं । राजन् ! पूर्वकालमें इन्द्र धर्मके विपरीत आचरण करके तृणबिन्दुमुनिके शापसे स्त्री-योनिको प्राप्त हो गये थे; परंतु इस अष्टाक्षर मन्त्रका जप करनेसे वे पुनः उस योनिसे मुक्त हो गये ॥ ८–१० ॥

सहस्रानीक उवाच

एतत्कथय भूदेव देवेन्द्रस्याघमोचनम् ।
कोऽपधर्मः कथं स्त्रीत्वं प्राप्तो मे वद कारणम् ॥ ११ ॥

सहस्रानीक बोले—भूमिदेव ! देवराज इन्द्रको जो पाप एवं शापसे छुटकारा मिला, उस प्रसङ्गका वर्णन कीजिये । उन्होंने कौन-सा अधर्म किया था, और किस कारण स्त्री-योनिको प्राप्त हुए—यह सब भी बताइये ॥ ११ ॥

श्रीमार्कण्डेय उवाच

राजेन्द्र महदाख्यानं शृणु कौतूहलान्वितम् ।
विष्णुभक्तिप्रजननं शृण्वतां पठतामिदम् ॥ १२ ॥

श्रीमार्कण्डेयजीने कहा—राजेन्द्र ! सुनो, यह उपाख्यान बहुत बड़ा तथा कौतूहलसे भरा हुआ है । जो लोग इसे सुनते और पढ़ते हैं, उनके हृदयमें यह आख्यान विष्णु-भक्ति उत्पन्न करता है ॥ १२ ॥

पुरा पुरंदरस्यैव देवराज्यं प्रकुर्वतः ।
वैराग्यस्यापि जननं सम्भूतं बाह्यवस्तुषु ॥ १३ ॥
इन्द्रस्तदाभूद्विषमस्वभावो
राज्येषु भोगेष्वपि सोऽप्यचिन्तयत् ।
ध्रुवं विरागीकृतमानसानां
स्वर्गस्य राज्यं न च किंचिदेव ॥ १४ ॥
राज्यस्य सारं विषयेषु भोगो
भोगस्य चान्ते न च किंचिदस्ति ।

विमृश्य चैतन्मुनयोऽप्यजस्रं
मोक्षाधिकारं परिचिन्तयन्ति ॥१५॥
सदैव भोगाय तपःप्रवृत्ति-
र्भोगावसाने हि तपो विनष्टम्।
मैत्र्यादिसंयोगपराङ्मुखानां
विमुक्तिभाजां न तपो न भोगः ॥१६॥
विमृश्य चैतत् स सुराधिनाथो
विमानमारुह्य सकिङ्किणीकम्।
नूनं हराराधनकारणेन
कैलासमभ्येति विमुक्तिकामः ॥१७॥

पूर्वकालकी बात है, एक समय देवलोकका राज्य भोगते हुए इन्द्रके लिये उनका वह राज्य ही बाह्य वस्तुओंमें वैराग्यका कारण बन गया। उस समय इन्द्रका स्वभाव राज्य-कार्यों और भोगोंके प्रति विषम (वैराग्यपूर्ण) हो गया। वे सोचने लगे—'यह निश्चित है कि विरक्त हृदयवाले पुरुषोंकी दृष्टिमें स्वर्गका राज्य कुछ भी महत्त्व नहीं रखता। राज्यका सार है—विषयोंका भोग तथा भोगके अन्तमें कुछ भी नहीं रह जाता। यही सोचकर मुनिगण सदा ही मोक्षाधिकारके विषयमें ही विचार करते हैं। लोगोंकी सदा भोगके लिये ही तपमें प्रवृत्ति हुआ करती है और भोगके अन्तमें तप नष्ट हो जाता है। परंतु जो लोग मैत्री आदिके द्वारा विषय-सम्पर्कसे विमुख हो गये हैं, उन मोक्षभागी पुरुषोंको न तपकी आवश्यकता होती है न योगकी।' इन सब बातोंका विचार करके देवराज इन्द्र क्षुद्रघण्टिकाओंकी ध्वनिसे युक्त विमानपर आरूढ़ हो भगवान् शंकरकी आराधनाके लिये कैलासपर्वतपर चले आये। उस समय उनके मनमें एकमात्र मोक्षकी कामना रह गयी थी ॥ १३–१७ ॥

स एकदा मानसमागतः सन्
संवीक्ष्य तां यक्षपतेश्च कान्ताम्।
समर्चयन्तीं गिरिजाङ्घ्रियुग्मं
ध्वजामिवानङ्गमहारथस्य ॥१८॥
प्रधानजाम्बूनदशुद्धवर्णां
कर्णान्तसंलग्नमनोज्ञनेत्राम्।
सुसूक्ष्मवस्त्रान्तरदृश्यगात्रां
नीहारमध्यादिव चन्द्रलेखाम् ॥१९॥
तां वीक्ष्य वीक्षणसहस्रभरेण कामं
कामाङ्गमोहितमतिर्न ययौ तदानीम्।
दूराध्वगं स्वगृहमेत्य सुसंचितार्थ-
स्तस्थौ तदा सुरपतिर्विषयाभिलाषी ॥२०॥
पूर्वं वरं स्यात् सुकुलेऽपि जन्म
ततो हि सर्वाङ्गशरीररूपम्।
ततो धनं दुर्लभमेव पश्चा-
द्धनाधिपत्यं सुकृतेन लभ्यम् ॥२१॥
स्वर्गाधिपत्यं च मया प्रलब्धं
तथापि भोगाय न चास्ति भाग्यम्।
यः स्वं परित्यज्य विमुक्तिकाम-
स्तिष्ठामि मे दुर्मतिरस्ति चित्ते ॥२२॥
मोक्षोऽमुना यद्यपि मोहनीयो
मोक्षेऽपि किं कारणमस्ति राज्ये।
क्षेत्रं सुपक्वं परिहृत्य द्वारे
किं नाम चारण्यकृषिं करोति ॥२३॥
संसारदुःखोपहता नरा ये
कर्तुं समर्था न च किंचिदेव।
अकर्मिणो भाग्यविवर्जिताश्च
वाञ्छन्ति ते मोक्षपथं विमूढाः ॥२४॥

कैलासपर रहते समय इन्द्र एक दिन घूमते हुए मानस-सरोवरके तटपर आये। वहाँ उन्होंने पार्वतीजीके युगल-चरणारविन्दोंका पूजन करती हुई यक्षराज कुबेरकी प्राणवल्लभा चित्रसेनाको देखा, जो कामदेवके महान् रथकी ध्वजा-सी जान पड़ती थी। उत्तम 'जाम्बूनद' नामक सुवर्णके समान उसके अङ्गोंकी दिव्य कान्ति थी। आँखें बड़ी-बड़ी और मनोहर थीं, जो कानके पासतक पहुँच गयी थीं। महीन साड़ीके भीतरसे उसके मनोहर अङ्ग इस प्रकार झलक रहे थे, मानो कुहासेके भीतरसे चन्द्रलेखा दृष्टिगोचर हो रही हो। अपने हजार नेत्रोंसे उस देवीको इच्छानुसार निहारते ही इन्द्रका हृदय कामसे मोहित हो गया। उस समय वे दूरके रास्तेपर स्थित अपने आश्रमपर नहीं गये और सम्पूर्ण मनोरथोंको मनमें लिये देवराज इन्द्र विषयाभिलाषी हो खड़े हो गये। वे सोचने लगे—'पहले तो उत्तम कुलमें जन्म पा जाना ही बहुत बड़ी

बात है, उसके बाद सर्वाङ्ग-सौन्दर्य और उसपर भी धन तो सर्वथा ही दुर्लभ है। इन सबके बाद धनाधिप (कुबेर) होना तो पुण्यसे ही सम्भव है। मैंने इन सबसे बड़े स्वर्गके आधिपत्यको प्राप्त किया है, फिर भी मेरे भाग्यमें भोग भोगना नहीं बदा है। मेरे चित्तमें ऐसी दुर्बुद्धि आ गयी है कि मैं स्वर्गका सुखभोग छोड़कर यहाँ मुक्तिकी इच्छासे आ पड़ा हूँ। मोक्ष-सुख तो इस राज्य-भोगद्वारा मोह लिया जा सकता है, परंतु क्या मोक्ष भी राज्य-प्राप्तिका कारण हो सकता है? भला, अपने द्वारपर पके अन्नसे युक्त खेतको छोड़कर कोई जंगलमें खेती करने क्यों जायगा? जो सांसारिक दुःखसे मारे-मारे फिरते हैं और कुछ भी करनेकी शक्ति नहीं रखते, वे ही अकर्मण्य, भाग्यहीन एवं मूढजन मोक्षमार्गकी इच्छा करते हैं' ॥ १८–२४ ॥

एतद्विमृश्य बहुधा मतिमान् प्रवीरो
रूपेण मोहितमना धनदाङ्गनायाः ।
सर्वाधिराकुलमतिः परिमुक्तधैर्यः
सस्मार मारममराधिपचक्रवर्ती ॥२५॥
समागतोऽसौ परिमन्दमन्दं
कामोऽतिकामाकुलचित्तवृत्तिः ।
पुरा महेशेन कृताङ्गनाशो
धैर्यात्क्षयं गच्छति को विशङ्कः ॥२६॥
आदिश्यतां नाथ यदस्ति कार्यं
को नाम ते सम्प्रति शत्रुभूतः ।
शीघ्रं समादेशय मा विलम्बं
तस्यापदं सम्प्रति भो दिशामि ॥२७॥

इन सब बातोंपर बारंबार विचार करके देवेश्वरोंके चक्रवर्ती सम्राट् बुद्धिमान् वीरवर इन्द्र कुबेर-पत्नी चित्रसेनाके रूपपर मोहित हो गये। समस्त मानसिक वेदनाओंसे व्याकुल हो, धैर्य खोकर वे कामदेवका स्मरण करने लगे। इन्द्रके स्मरण करनेपर अत्यन्त कामनाओंसे व्याप्त चित्तवृत्तिवाला कामदेव बहुत धीरे-धीरे डरता हुआ वहाँ आया; क्योंकि वहीं पूर्वकालमें शंकरजीने उसके शरीरको जलाकर भस्म कर दिया था। क्यों न हो, प्राणसंकटके स्थानपर धीरतापूर्वक और निर्भय होकर कौन जा सकता है? कामदेवने आकर कहा—'नाथ! मुझसे जो कार्य लेना हो, आज्ञा कीजिये; बताइये तो सही, इस समय कौन आपका शत्रु बना हुआ है? शीघ्र बताइये, विलम्ब न कीजिये; मैं अभी उसे आपत्तिमें डालता हूँ' ॥ २५–२७ ॥

श्रुत्वा तदा तस्य वचोऽभिरामं
मनोगतं तत्परमं तुतोष ।
निष्पन्नमर्थं सहसैव मत्वा
जगाद वाक्यं स विहस्य वीरः ॥२८॥
रुद्रोऽपि येनार्धशरीरमात्र-
श्चक्रेऽप्यनङ्गत्वमुपागतेन ।
सोढुं समर्थोऽथ परोऽपि लोके
को नाम ते मार शराभिघातम् ॥२९॥
एकाग्रचित्ता गिरिजार्चनेऽपि
या मोहयत्येव ममात्र चित्तम् ।
एतामनङ्गायतलोचनाख्यां
मदङ्गसङ्गैकरसां विधेहि ॥३०॥

उस समय कामदेवके उस मनोभिराम वचनको सुनकर मन-ही-मन उसपर विचार करके इन्द्र बहुत संतुष्ट हुए। अपने मनोरथको सहसा सिद्ध होते जान वीरवर इन्द्रने हँसकर कहा—'कामदेव! अनङ्ग बन जानेपर भी तुमने जब शंकरजीको भी आधे शरीरका बना दिया, तब संसारमें दूसरा कौन तुम्हारे उस शराघातको सह सकता है? अनङ्ग! जो गिरिजा-पूजनमें एकाग्रचित्त होनेपर भी मेरे मनको निश्चय ही मोहे लेती है, उस विशाल नयनोंवाली सुन्दरीको तुम एकमात्र मेरे अङ्ग-सङ्गकी सरस भावनासे युक्त कर दो' ॥ २८–३० ॥

स एवमुक्तः सुरवल्लभेन
स्वकार्यभावाधिकगौरवेण ।
संधाय बाणं कुसुमायुधोऽपि
सस्मार मारः परिमोहनं सुधीः ॥३१॥
सम्मोहिता पुष्पशरेण बाला
कामेन कामं मदविह्वलाङ्गी ।
विहाय पूजां हसते सुरेशं
कः कामकोदण्डरवं सहेत ॥३२॥

अपने कार्यको अधिक महत्त्व देनेवाले सुरराज इन्द्रके यों कहनेपर उत्तम बुद्धिवाले कामदेवने भी अपने पुष्पमय धनुषपर बाण रखकर मोहन-मन्त्रका स्मरण किया। तब

कामदेवद्वारा पुष्पबाणसे मोहित की हुई; वह बाला अपने सम्पूर्ण अङ्गमें मदके उद्रेकसे विह्वल हो गयी और पूजा छोड़ इन्द्रकी ओर देखकर मुस्काने लगी। भला, कामदेवके धनुषकी टंकार कौन सह सकता है॥ ३१-३२॥

विलोलनेत्रे अयि कासि बाले
सुराधिपो वाक्यमिदं जगाद।
सम्मोहयन्तीव मनांसि पुंसां
कस्येह कान्ता वद पुण्यभाजः॥३३॥
उक्तापि बाला मदविह्वलाङ्गी
रोमाञ्चसंस्वेदसकम्पगात्रा।
कृताकुला कामशिलीमुखेन
सगद्गदं वाक्यमुवाच मन्दम्॥३४॥
कान्ता धनेशस्य च यक्षकन्या
प्राप्ता च गौरीचरणार्चनाय।
प्रब्रूहि कार्यं च तवास्ति नाथ
कस्त्वं वदेस्तिष्ठसि कामरूपः॥३५॥

इन्द्र उसको अपनी ओर निहारते देखकर यह वचन बोले—'चञ्चल नेत्रोंवाली बाले! तुम कौन हो, जो पुरुषोंके मनको इस प्रकार मोहे लेती हो? बताओ तो, तुम किस पुण्यात्माकी पत्नी हो?' इन्द्रके इस प्रकार पूछनेपर उसके अङ्ग मदसे विह्वल हो उठे। शरीरमें रोमाञ्च, स्वेद और कम्प होने लगे। वह कामबाणसे व्याकुल हो गद्गद कण्ठसे धीरे-धीरे इस प्रकार बोली—'नाथ! मैं धनाधिप कुबेरकी पत्नी एक यक्ष-कन्या हूँ। पार्वतीजीके चरणोंकी पूजा करनेके लिये यहाँ आयी थी। आप अपना कार्य बताइये; आप कौन हैं, जो साक्षात् कामदेवके समान रूप धारण किये यहाँ खड़े हैं?'॥ ३३-३५॥

इन्द्र उवाच

सा त्वं समागच्छ भजस्व मां चिरा-
न्मदङ्गसङ्गोत्सुकतां व्रजाशु।
त्वया विना जीवितमप्यनल्पं
स्वर्गस्य राज्यं मम निष्फलं स्यात्॥३६॥

इन्द्र बोले—प्रिये! मैं स्वर्गका राजा इन्द्र हूँ। तुम मेरे पास आओ और मुझे अपनाओ तथा चिरकालतक मेरे अङ्ग-सङ्गके लिये शीघ्र ही उत्सुकता धारण करो। देखो, तुम्हारे बिना मेरा यह जीवन और स्वर्गका विशाल राज्य भी व्यर्थ हो जायगा॥ ३६॥

उक्ता च सैवं मधुरं च तेन
कंदर्पसंतापितचारुदेहा।
विमानमारुह्य चलत्पताकं
सुरेशकण्ठग्रहणं चकार॥३७॥
जगाम शीघ्रं स हि नाकनाथः
साकं तया मन्दरकन्दरासु।
अदृष्टदेवासुरसंचरासु
विचित्ररत्नाङ्कुरभासुरासु॥३८॥
रेमे तया साकमुदारवीर्य-
श्चित्रं सुरैश्वर्यगतादरोऽपि।
स्वयं च यस्या लघुपुष्पशय्यां
चकार चातुर्यनिधिः सकामः॥३९॥
जातः कृतार्थोऽमरवृन्दनाथः
सकामभोगेषु सदा विदग्धः।
मोक्षाधिकं स्नेहरसातिमृष्टं
पराङ्गनालिङ्गनसङ्गसौख्यम्॥४०॥

इन्द्रने मधुर वाणीमें जब इस प्रकार कहा, तब उसका सुन्दर शरीर कामवेदनासे पीडित होने लगा और वह फहराती हुई पताकाओंसे सुशोभित विमानपर आरूढ हो देवराजके कण्ठसे लग गयी। तब स्वर्गके राजा इन्द्र शीघ्र ही उसके साथ मन्दराचलकी उन कन्दराओंमें चले गये, जहाँका मार्ग देवता और असुर—दोनोंकी ही दृष्टिमें नहीं आया था और जो विचित्र रत्नोंकी प्रभासे प्रकाशित थीं। आश्चर्य है कि देवताओंके राज्यके प्रति आदर न रखते हुए भी वे उदारपराक्रमी इन्द्र उस सुन्दरी यक्ष-बालाके साथ वहाँ रमण करने लगे तथा कामके वशीभूत हो परम चतुर इन्द्रने अपने हाथों चित्रसेनाके लिये शीघ्रतापूर्वक छोटी-सी पुष्पशय्या तैयार की। कामोपभोगमें परम चतुर देवराज इन्द्र चित्रसेनाके समागमसे कृतार्थताका अनुभव करने लगे। स्नेहरससे अत्यन्त मधुर प्रतीत होनेवाला वह परस्त्रीके आलिङ्गन और समागमका सुख उन्हें मोक्षसे भी बढ़कर जान पड़ा॥ ३७-४०॥

अथागता यक्षपतेः समीपं
नार्योऽनुवर्ज्यैव च चित्रसेनाम् ।
ससम्भ्रमाः सम्भ्रमखिन्नगात्राः
सगद्गदं प्रोचुरसाहसज्ञाः ॥४१॥
नूनं समाकर्णय यक्षनाथ
विमानमारोप्य जगाम कश्चित् ।
संवीक्षमाणः ककुभोऽपि कान्तां
विगृह्य वेगादिह सोऽपि तस्करः ॥४२॥

इधर, इन्द्र जब चित्रसेनाको लेकर मन्दराचलपर चले आये, तब उसकी सङ्गिनी स्त्रियाँ उसे साथ लिये बिना ही यक्षराज कुबेरके समीप वेगपूर्वक आयीं । वे दुस्साहससे अनभिज्ञ थीं, अतः घबराहटके कारण उनके सारे शरीरमें व्यथा हो रही थी । वे गद्गद कण्ठसे बोलीं—'यक्षपते ! निश्चय ही आप हमारी यह बात सुनें—आपकी भार्या चित्रसेनाको किसी अज्ञात पुरुषने पकड़कर विमानपर बिठा लिया और चारों ओर सशङ्कदृष्टिसे देखता हुआ वह चोर बड़े वेगसे कहीं चला गया है' ॥ ४१-४२ ॥

वचो निशम्याथ धनाधिनाथो
विषोपमं जातमषीनिभाननः ।
जगाद भूयो न च किंचिदेव
बभूव वै वृक्ष इवाग्निदग्धः ॥४३॥
विज्ञापितार्थो वरकन्यकाभि-
र्यश्चित्रसेनासहचारिणीभिः ।
मोहापनोदाय मतिं दधानः
स कण्ठकुब्जोऽपि समाजगाम ॥४४॥
श्रुत्वाऽऽगतं वीक्ष्य स राजराज
उन्मीलिताक्षो वचनं जगाद ।
विनिःश्वसन् गाढसकम्पगात्रः
स्वस्थं मनोऽप्याशु विधाय दीनः ॥४५॥

विषके समान दुस्सह प्रतीत होनेवाली इस बातको सुननेसे धनाधिप कुबेरका मुँह काला पड़ गया । वे अग्निसे जले हुए वृक्षके समान हो गये । उस समय उनके मुखसे कोई बात नहीं निकली । इसी समय चित्रसेनाकी सहचरी श्रेष्ठ यक्ष-कन्याओंसे यह समाचार जानकर कुबेरका मन्त्री कण्ठकुब्ज भी अपने स्वामीका मोह दूर करनेके विचारसे वहाँ आया । उसका आगमन सुन राजराज कुबेरने आँखें खोलकर उसकी ओर देखा और लंबी साँस खींचते हुए अपने चित्तको यथा-सम्भव शीघ्र सँभालकर वे दीनभावसे बोले । उस समय उनका शरीर अत्यन्त कम्पित हो रहा था ॥ ४३—४५ ॥

तद्यौवनं यद्युवतीविनोदो
धनं तु चैतत्स्वजनोपयोगि ।
तज्जीवितं यत्क्रियते सुधर्म-
स्तदाधिपत्यं यदि नष्टविग्रहम् ॥४६॥
धिङ्मे धनं जीवितमत्यनल्पं
राज्यं बृहत्सम्प्रति गुह्यकानाम् ।
विशामि चाग्निं न च वेद कश्चित्
पराभवोऽस्तीति च को मृतानाम् ॥४७॥
पार्श्वे स्थितस्यापि च जीवतो मे
गता तडागं गिरिजार्चनाय ।
हृता च केनापि वयं न विद्मो
ध्रुवं न तस्यास्ति भयं च मृत्योः ॥४८॥

वे कहने लगे—'वही यौवन सफल है, जिससे युवतीका मनोरञ्जन हो सके; धन भी वही सार्थक है, जो आत्मीय जनोंके उपयोगमें आ सके । जीवन वह सफल है, जिससे सद्धर्म किया जाय और प्रभुत्व वही सार्थक है, जिसमें युद्ध और कलहके मूल नष्ट हो गये हों । इस समय मेरे इस विपुल धनको, गुह्यकोंके इस विशाल राज्यको और मेरे इस जीवन-को भी धिक्कार है ! अभीतक मेरे इस अपमानको कोई नहीं जानता; अतः इसी समय अग्निमें जल मरूँगा । पीछे यदि इस समाचारको लोग जान भी लें तो क्या ? मृत पुरुषोंका क्या अपमान होगा ? हा ! वह मानससरोवरके तटपर गिरिजा-पूजनके लिये गयी थी । यहाँ निकट ही था और जीवित भी रहा; तो भी किसीने उसे हर लिया । हम नहीं जानते वह कौन है । मैं समझता हूँ, अवश्य ही उस दुष्टको मृत्युका भय नहीं है' ॥ ४६—४८ ॥

जगाद वाक्यं स च कण्ठकुब्जो
मोहापनोदाय विभोः स मन्त्री ।
आकर्ण्यतां नाथ न चास्ति योग्यः
कान्तावियोगे निजदेहघातः ॥४९॥

एका पुरा रामवधूर्हृता च
निशाचरेणापि मृतो न सोऽपि ।
अनेकशः सन्ति तवात्र नार्यः
को नाम चित्ते क्रियते विषादः ॥५०॥
विमुच्य शोकं कुरु विक्रमे मतिं
धैर्यं समालम्बय यक्षराज ।
भृशं न जल्पन्ति रुदन्ति साधवः
पराभवं बाह्यकृतं सहन्ते ॥५१॥
कृतं हि कार्यं गुरु दर्शयन्ति
सहायवान् वित्तप कातरोऽसि किम् ।
सहायकार्यं कुरुते हि सम्प्रति
स्वयं हि यस्यावरजो विभीषणः ॥५२॥

स्वामीकी यह बात सुनकर उनका मोह दूर करनेके लिये कुबेरके उस मन्त्री कण्ठकुब्जने यह वचन कहा—'नाथ ! सुनिये, स्त्रीके वियोगमें शरीर-त्याग करना आपके लिये उचित नहीं है। पूर्वकालमें भगवान् श्रीरामचन्द्रजीकी एकमात्र पत्नी सीता-को भी निशाचर रावणने हर लिया था, परंतु श्रीरामचन्द्रजीने प्राण नहीं त्यागा। आपके यहाँ तो अनेक स्त्रियाँ हैं, फिर आप मनमें यह कैसा विषाद ला रहे हैं ? यक्षराज ! शोक त्याग-कर पराक्रममें मन लगाइये; धैर्य धारण कीजिये। साधु पुरुष बहुत बातें नहीं बनाते और न बैठकर रोते ही हैं; वे दूसरोंके द्वारा परोक्षमें किये हुए अपने अपमानको उस समय चुपचाप सह लेते हैं। वित्तपते ! महापुरुष समय आनेपर महान् कार्य कर दिखाते हैं। आपके तो अनेक सहायक हैं, आप क्यों कातर हो रहे हैं ! इस समय तो आपके छोटे भाई विभीषण स्वयं ही आपकी सहायता कर रहे हैं ॥ ४९—५२ ॥

धनद उवाच

विभीषणो मे प्रतिपक्षभूतो
दायादभावं न विमुञ्चतीति ।
ध्रुवं प्रसन्ना न भवन्ति दुर्जनाः
कृतोपकारा हरिवज्रनिष्ठुराः ॥५३॥
न चोपकारैर्न गुणैर्न सौहृदैः
प्रसादमायाति मनो हि गोत्रिगः ।

कुबेर बोले—विभीषण तो मेरे विपक्षी ही बने हुए हैं, वे अब भी मेरे साथ कौटुम्बिक विरोधका त्याग नहीं करते। यह निश्चित बात है कि दुर्जन पुरुष उपकार करने-पर भी प्रसन्न नहीं होते, वे इन्द्रके वज्रके सदृश कठोर होते हैं। सगोत्रका मन उपकारोंसे, गुणोंसे अथवा मैत्रीसे भी प्रायः प्रसन्न नहीं होता ॥ ५३½ ॥

उवाच वाक्यं स च कण्ठकुब्जो
युक्तं त्वयोक्तं च धनाधिनाथ ॥५४॥
परस्परं घ्नन्ति च ते विरुद्धा-
स्तथापि लोके न पराभवोऽस्ति ।
पराभवं नान्यकृतं सहन्ते
नोष्णं जलं ज्वालयते तृणानि ॥५५॥
तस्मात्समागच्छ धनाधिनाथ
पार्श्वं च वेगेन विभीषणस्य ।
स्वबाहुवीर्यार्जितवित्तभोगिनां
स्वबन्धुवर्गेषु हि को विरोधः ॥५६॥

यह सुनकर कण्ठकुब्जने कहा—"धनाधिनाथ ! आपने ठीक कहा है। विरोध होनेपर सगोत्र पुरुष अवश्य ही परस्पर घात-प्रतिघात करते हैं, तथापि लोकमें उनका पराभव नहीं देखा जाता; क्योंकि कुटुम्बीजन दूसरेके द्वारा किये हुए अपने बन्धुजनके अपमानको नहीं सह सकते। जिस प्रकार सूर्यकी किरणोंसे तप्त हुआ जल अपने भीतरके तृणोंको नहीं जलाता, उसी प्रकार दूसरोंसे अपमानित कुटुम्बी जन अपने पार्श्ववर्ती बन्धुओंको नहीं सताते। इसलिये धनाधिप ! आप बहुत शीघ्र विभीषणके पास चलिये। जो लोग अपने बाहुबलसे उपार्जित धनका उपभोग करते हैं, उन्हें भाई-बन्धुओंके साथ क्या विरोध हो सकता है' ॥ ५४—५६ ॥

इत्युक्तः स तदा तेन कण्ठकुब्जेन मन्त्रिणा ।
विभीषणस्य सामीप्यं जगामाशु विचारयन् ॥५७॥
ततो लङ्काधिपः श्रुत्वा बान्धवं पूर्वजं तदा ।
प्राप्तं प्रत्याजगामाशु विनयेन समन्वितः ॥५८॥
ततो विभीषणो दृष्ट्वा तदा दीनं च बान्धवम् ।
संतप्तमानसो भूप जगादेदं वचो महत् ॥५९॥

अपने मन्त्री कण्ठकुब्जके इस प्रकार कहनेपर कुबेर मन-ही-मन उसपर विचार करते हुए शीघ्र ही विभीषणके पास गये। लङ्कापति विभीषणने जब अपने ज्येष्ठ भ्राताका आगमन सुना, तब उन्होंने बड़ो विनयके साथ उनकी अगवानी की। राजन्! फिर विभीषणने अपने भाईको जब दीनदशामें देखा, तब उन्होंने मन-ही-मन दुखी होकर उनसे यह महत्त्वपूर्ण बात कही ॥ ५७—५९ ॥

विभीषण उवाच

कथं दीनोऽसि यक्षेश किं कष्टं तव चेतसि।
निवेदयाधुनास्माकं निश्चयान्मार्जयामि तत् ॥६०॥
तदैकान्तं समासाद्य कथयामास वेदनाम्।

विभीषण बोले—'यक्षराज! आप दीन क्यों हो रहे हैं? आपके मनमें क्या कष्ट है? इस समय आप उस कष्टको मुझे बताइये। मैं निश्चय ही उसका मार्जन करूँगा।' तब कुबेरने एकान्तमें जाकर विभीषणसे अपनी मनोवेदना बतलायी ॥ ६०½ ॥

धनद उवाच

गृहीता किं स्वयं याता निहता केनचिद्द्विषा ॥६१॥
भ्रातः कान्तां न पश्यामि चित्रसेनां मनोरमाम्।
एतद्बन्धो महत्कष्टं मम नारीसमुद्भवम् ॥६२॥
प्राणान् वै घातयिष्यामि अनासाद्य च वल्लभाम्।

कुबेर बोले—भाई! कुछ दिनोंसे मैं अपनी मनोरमा भार्या चित्रसेनाको नहीं देख रहा हूँ। न जाने उसे किसीने पकड़ लिया या वह स्वयं किसीके साथ चली गयी अथवा किसी शत्रुने उसे मार डाला। बन्धो! मुझे अपनी स्त्रीके वियोगका महान् कष्ट हो रहा है। यदि वह प्राणवल्लभा न मिली तो मैं अपने प्राण त्याग दूँगा ॥ ६१-६२½ ॥

विभीषण उवाच

आनयिष्यामि ते कान्तां यत्र तत्र स्थितां विभो ॥६३॥
कः समर्थोऽधुनास्माकं हर्तुं नाथ तृणस्य च।
ततो विभीषणस्तत्र नाडीजङ्घां निशाचरीम् ॥६४॥
भृशं संजल्पयामास नानामायागरीयसीम्।
धनदस्य च या कान्ता चित्रसेनाभिधानतः ॥६५॥
सा च केन हृता लोके मानसे सरसि स्थिता।
तां च जानीहि संवीक्ष्य देवराजादिवेश्मसु ॥६६॥

विभीषण बोले—'प्रभो! आपकी भार्या जहाँ-कहीं भी होगी, मैं उसे ला दूँगा। नाथ! इस समय संसारमें किसकी सामर्थ्य है, जो हमारा तृण भी चुरा सके।' यह कहकर विभीषणने नाना प्रकारकी मायाके ज्ञानमें बढ़ी-चढ़ी 'नाडीजङ्घा' नामकी निशाचरीसे बहुत कुछ कहा और बताया—''कुबेरकी जो 'चित्रसेना' नामकी पत्नी है, वह एक दिन जब मानसरोवरके तटपर थी, तभी वहाँसे किसीने उसे हर लिया। तुम इन्द्र आदि लोकपालोंके भवनोंमें देखकर उसका पता लगाओ'' ॥ ६३—६६ ॥

ततो निशाचरी भूप कृत्वा मायामयं वपुः।
जगाम त्रिदिवं शीघ्रं देवराजादिवेश्मसु ॥६७॥
यया दृष्ट्या क्षणं दृष्टो मोहं यास्यति चोपलः।
यस्याः समं ध्रुवं रूपं विद्यते न चराचरे ॥६८॥
एतस्मिन्नेव काले च देवराजोऽपि भूपते।
सम्प्राप्तो मन्दराच्छीघ्रं प्रेरितश्चित्रसेनया ॥६९॥
ग्रहीतुं दिव्यपुष्पाणि नन्दनप्रभवाणि च।
तत्र पश्यन् स तां तन्वीं निजस्थाने समागताम् ॥७०॥
अतीवरूपसम्पन्नां गीतगानपरायणाम्।
तां वीक्ष्य देवराजोऽपि स कामवशगोऽभवत् ॥७१॥
ततः सम्प्रेरयामास देववैद्यौ सुराधिपः।
तस्याः पार्श्वे समानेतुं ध्रुवं चान्तःपुरे तदा ॥७२॥
देववैद्यौ तदाऽऽगत्य जल्पतश्चाग्रतः स्थितौ।
आगच्छ भव तन्वङ्गि देवराजसमीपगा ॥७३॥
इत्युक्ता सा तदा ताभ्यां जगाद मधुराक्षरम्।

भूप! तब वह निशाचरी मायामय शरीर धारणकर इन्द्रादि देवताओंके भवनोंमें खोज करनेके लिये शीघ्र ही स्वर्गलोकमें गयी। उस निशाचरीने ऐसा सुन्दर रूप बनाया था, जिसकी एक ही दृष्टि पड़नेसे पत्थर भी मोहित हो सकता था। अवश्य ही उस समय वैसा मोहन रूप चराचर जगत्में कहीं नहीं था। भूपते! इसी समय देवराज इन्द्र भी चित्रसेनाके भेजनेसे उतावलीके साथ नन्दनवनके दिव्य पुष्प लेनेके लिये मन्दराचलसे स्वर्गलोकमें आये थे। वहाँ अपने स्थानपर आयी हुई उस अत्यन्त रूपवती रमणीको, जो मधुर गान गा रही थी, देख देवराज भी

कामके वशीभूत हो गये। तब देवेन्द्रने उसे जैसे भी हो, अपने अन्तःपुरमें बुला लानेके लिये देववैद्य अश्विनीकुमारोंको उसके पास भेजा। दोनों अश्विनीकुमार उसके सामने जाकर खड़े हुए और कहने लगे—"कृशाङ्गि! आओ, देवराज इन्द्रके निकट चलो।" उन दोनोंके द्वारा यों कही जानेपर उस सुन्दरीने मधुर वाणीमें उत्तर दिया ॥६७–७३½॥

नाडीजङ्घोवाच

देवराजः स्वयं यन्मे पार्श्वं चात्रागमिष्यति ॥७४॥
तस्य वाच्यं च कर्तव्यं नान्यथा सर्वथा मया।

नाडीजङ्घा बोली—यदि देवराज इन्द्र स्वयं ही मेरे पास आयेंगे तो मैं उनकी बात मान सकती हूँ; अन्यथा बिल्कुल नहीं ॥ ७४½ ॥

तौ तदा वासवं गत्वा ऊचतुर्वचनं शुभम् ॥७५॥

तब अश्विनीकुमारोंने इन्द्रके पास जाकर उसका शुभ संदेश कहा ॥ ७५ ॥

वासव उवाच

समादेशय तन्वङ्गि किं कर्तव्यं मयाधुना।
सर्वदा दासभूतस्ते याचसे तद्ददाम्यहम् ॥७६॥

तब इन्द्र स्वयं आकर बोले—कृशाङ्गि! आज्ञा दो, मैं इस समय तुम्हारा कौन-सा कार्य करूँ? मैं सदाके लिये तुम्हारा दास हो गया हूँ; तुम जो कुछ माँगोगी, वह सब दूँगा ॥ ७६ ॥

तन्वङ्ग्युवाच

याचितं यदि मे नाथ दास्यसीति न संशयः।
ततोऽहं वशगा देव भविष्यामि न संशयः ॥७७॥
अद्य त्वं दर्शयास्माकं सर्वः कान्तापरिग्रहः।
मम रूपसमा रामा कान्ता ते चास्ति वा न वा ॥७८॥

कृशाङ्गीने कहा—नाथ! यदि आप मेरी माँगी हुई वस्तु अवश्य दे देंगे तो निस्संदेह मैं आपकी वशवर्तिनी हो जाऊँगी। आज आप अपनी समस्त भार्याओंको मुझे दिखाइये; देखूँ, आपकी कोई भी स्त्री मेरे रूपके सदृश है या नहीं? ॥ ७७-७८ ॥

तया चोक्ते च वचने स भूयो वासवोऽब्रवीत्।
दर्शयिष्यामि सर्वं ते देवि कान्तापरिग्रहम् ॥७९॥
स सर्वं दर्शयामास वासवोऽन्तःपुरं तदा।
ततो जगाद भूयः स किंचिद्गूढं मम स्थितम् ॥८०॥
विमुच्यैकां च युवतीं सर्वं ते दर्शितं मया।

उसके यों कहनेपर इन्द्रने पुनः कहा—"देवि! चलो, मैं तुम्हें अपनी समस्त भार्याओंको दिखाऊँगा।" यह कहकर इन्द्रने उसी समय उसे अपना सारा अन्तःपुर दिखाया। तब उस सुन्दरीने पुनः कहा—'अभी मुझसे कुछ छिपाया गया है। केवल एक युवतीको छोड़कर और सब कुछ आपने दिखा दिया' ॥ ७९-८०½ ॥

इन्द्र उवाच

सा रामा मन्दरे चास्ति अविज्ञाता सुरासुरैः ॥८१॥
तां च ते दर्शयिष्यामि नाख्येयं कस्यचित्त्वया।
ततः स देवराजोऽपि तया सार्धं च भूपते ॥८२॥
गच्छन्नेवाम्बरे भूप मन्दरं प्रति भूधरम्।
तस्य वै गच्छमानस्य विमानेनार्कवर्चसा ॥८३॥
दर्शनं नारदस्यापि तस्य जातं तदाम्बरे।
तं वीक्ष्य नारदं वीरो लज्जमानोऽपि वासवः ॥८४॥
नमस्कृत्य जगादोच्चैः क्व यास्यसि महामुने।

इन्द्रने कहा—"वह रमणी मन्दराचलपर है। देवता और असुर—किसीको भी उसका पता नहीं है। मैं उसे भी तुम्हें दिखा दूँगा, परंतु यह रहस्य किसीपर प्रकट न करना।" भूपाल! यह कहकर देवराज इन्द्र उसके साथ आकाशमार्गसे मन्दराचलकी ओर चले। जिस समय वे सूर्यके समान कान्तिमान् विमानसे चले जा रहे थे, उसी समय उन्हें आकाशमें देवर्षि नारदका दर्शन हुआ। नारदजीको देखकर वीरवर इन्द्र यद्यपि लज्जित हुए, तथापि उन्हें नमस्कार करके पूछा—'महामुने! आप कहाँ जायँगे?' ॥ ८१-८४½ ॥

ततः कृताशीः स मुनिरवदत्त्रिदिवेश्वरम् ॥८५॥
गच्छामि मानसे स्नातुं देवराज सुखी भव।
नाडीजङ्घेऽस्ति कुशलं राक्षसानां महात्मनाम् ॥८६॥
विभीषणोऽपि ते भ्राता सुखी तिष्ठति सर्वदा।
एवमुक्ता च मुनिना सा कृष्णवदनाभवत् ॥८७॥

विस्मितो देवराजोऽपि छलितो दुष्टयानया ।
नारदोऽपि गतः स्नातुं कैलासे मानसं सरः ॥८८॥
इन्द्रस्तां हन्तुकामोऽपि आगच्छन्मन्दराचलम् ।
यत्राश्रमोऽस्ति वै नूनं तृणविन्दोर्महात्मनः ॥८९॥
क्षणं विश्रम्य तत्रैव धृत्वा केशेषु राक्षसीम् ।
हन्तुमिच्छति देवेशो नाडीजङ्घां निशाचरीम् ॥९०॥
तावत्तत्र समायातस्तृणविन्दुर्निजाश्रमात् ।

तब मुनिवर नारदजीने आशीर्वाद देते हुए स्वर्गाधिपति इन्द्रसे कहा—'देवराज ! आप सुखी हों, मैं इस समय मानससरोवरपर स्नान करने जा रहा हूँ।' [फिर उन्होंने नाडीजङ्घाको पहचानकर कहा—] 'नाडीजङ्घे ! कहो तो, महात्मा राक्षसोंका कुशल तो है न ? तुम्हारे भाई विभीषण तो सुखपूर्वक हैं न ?' नारदजीकी यह बात सुनते ही उसका मुख भयसे काला पड़ गया। देवराज इन्द्र भी बहुत आश्चर्यमें पड़े और मन-ही-मन कहने लगे—'इस दुष्टने मुझे छल लिया।' नारदजी भी वहाँसे कैलास पर्वतके निकट मानससरोवरमें स्नान करनेके लिये चले गये। तब इन्द्र भी उस राक्षसीका वध करनेके लिये मन्दराचलपर, जहाँ महात्मा तृणविन्दुका आश्रम था, आये और वहाँ थोड़ी देरतक विश्राम करके वे उस नाडीजङ्घा राक्षसीके केश पकड़कर उसे मारना ही चाहते थे कि इतनेमें महात्मा तृणविन्दु अपने आश्रमसे निकलकर वहाँ आ गये ॥ ८५-९०½ ॥

धृता क्रन्दति सा राजन्निन्द्रेणापि निशाचरी ॥९१॥
मा मां रक्षति पुण्यात्मा हन्यमानां च साम्प्रतम् ।

राजन् ! इधर इन्द्रके द्वारा पकड़ी जानेपर वह राक्षसी भी करुण विलाप करने लगी—'हा ! मैं मारी जा रही हूँ; इस समय कोई भी पुण्यात्मा पुरुष मुझ दीनाको नहीं बचा रहा है' ॥ ९१½ ॥

तदाऽऽगत्य मुनिश्रेष्ठस्तृणविन्दुर्महातपाः ॥९२॥
जगाद पुरतः स्थित्वा मुञ्चेमां महिलां वने ।

उसी समय महातपस्वी तृणविन्दु मुनि वहाँ आ पहुँचे और इन्द्रके सामने खड़े हो बोले—'हमारे तपोवनमें इस महिलाको न मारो, छोड़ दो' ॥ ९२½ ॥

जल्पत्येवं मुनौ तस्मिन् महेन्द्रेण निशाचरी ॥९३॥
वज्रेण निहता भूयः कोपयुक्तेन चेतसा ।
स चुकोप मुनिश्रेष्ठः प्रेक्षमाणो मुहुर्मुहुः ॥९४॥
यदेषा युवती दुष्ट निहता मे तपोवने ।
ततस्त्वं मम शापेन निश्चयात्स्त्री भविष्यसि ॥९५॥

भूप ! तृणविन्दु मुनि यों कह ही रहे थे कि महेन्द्रने क्रुद्ध होकर वज्रसे उस राक्षसीको मार ही तो डाला। तब वे मुनिवर इन्द्रकी ओर बार-बार देखते हुए बहुत ही कुपित हुए और बोले—'रे दुष्ट ! तूने मेरे तपोवनमें इस युवतीका वध किया है, इसलिये तू मेरे शापसे निश्चय ही स्त्री हो जायगा' ॥ ९३-९५ ॥

इन्द्र उवाच

एषा नाथ महादुष्टा राक्षसी निहता मया ।
अहं स्वामी सुराणां च शापं मा देहि मेऽधुना ॥९६॥

इन्द्र बोले—नाथ ! मैं देवताओंका स्वामी इन्द्र हूँ और यह स्त्री महादुष्टा राक्षसी थी; इसलिये मैंने इसका वध किया है। आप इस समय मुझे शाप न दें ॥९६॥

मुनिरुवाच

नूनं तपोवनेऽस्माकं दुष्टास्तिष्ठन्ति साधवः ।
ममात्र तपसो भावान्न निघ्नन्ति परस्परम् ॥९७॥

मुनि बोले—अवश्य ही मेरे तपोवनमें भी दुष्ट और साधु पुरुष भी रहते हैं, परंतु वे मेरी तपस्याके प्रभावसे परस्पर किसीका वध नहीं करते। (तूने मेरे तपोवनकी मर्यादा भङ्ग की है, अतः तू शापके ही योग्य है।) ॥ ९७ ॥

इत्युक्तो हि तदा चेन्द्रः प्राप्तः स्त्रीत्वं न संशयः ।
जगाम त्रिदिवं भूप हतशक्तिपराक्रमः ॥९८॥
नासीनो हि भवत्येव सर्वदा देवसंसदि ।
देवा दुःखं समापन्ना दृष्ट्वा स्त्रीत्वं गतं हरिम् ॥९९॥
ततो देवगणाः सर्वे वासवेन समन्विताः ।
जग्मुश्च ब्रह्मसदनं तथा दीना शची तदा ॥१००॥
ब्रह्मा भग्नसमाधिश्च तावत्तत्रैव संस्थिताः ।
देवा ऊचुश्च ते सर्वे वासवेन समन्विताः ॥१०१॥

भूप ! मुनिके यों कहनेपर इन्द्र निस्संदेह स्त्री-योनिको प्राप्त हो गये और पराक्रम तथा शक्ति खोकर स्वर्गको लौट आये। उन्होंने सदा ही लज्जा और दुःखसे खिन्न

रहनेके कारण देवताओंकी सभामें बैठना ही छोड़ दिया। इधर देवता भी इन्द्रको स्त्रीके रूपमें परिवर्तित हुआ देखकर बहुत दुखी हुए। तत्पश्चात् सभी देवता और दीना शची इन्द्रको साथ लेकर ब्रह्माजीके धामको गये। जबतक ब्रह्माजी समाधिसे विरत हुए, तबतक वे सभी वहीं ठहरे रहे और इन्द्रके साथ ही सब देवता ब्रह्माजीसे बोले ॥ ९८—१०१॥

तृणबिन्दोर्मुनेः शापाद्यातः स्त्रीत्वं सुराधिपः।
स मुनिः कोपवान् ब्रह्मन्नैव गच्छत्यनुग्रहम् ॥१०२॥

'ब्रह्मन्! सुरराज इन्द्र तृणबिन्दु मुनिके शापसे स्त्रीयोनिको प्राप्त हो गये हैं; वे मुनि बड़े क्रोधी हैं, किसी प्रकार अनुग्रह नहीं करते' ॥ १०२ ॥

पितामह उवाच

न मुनेरपराधः स्यात्तृणबिन्दोर्महात्मनः।
स्वकर्मणोपयातोऽसौ स्त्रीत्वं स्त्रीवधकारणात् ॥१०३॥
चकार दुर्नयं देवा देवराजोऽपि दुर्मदः।
जहार चित्रसेनां च सुगुप्तां धनदाङ्गनाम् ॥१०४॥
तथा जघान युवतीं तृणबिन्दोस्तपोवने।
तेन कर्मविपाकेन स्त्रीभावं वासवो गतः ॥१०५॥

ब्रह्माजी बोले—इसमें उन महात्मा तृणबिन्दु मुनिका कोई अपराध नहीं है। इन्द्र स्त्रीवधरूपी अपने ही कर्मसे स्त्री-भावको प्राप्त हुए हैं। देवताओ! देवराज इन्द्रने भी मदमत्त होकर बड़ा ही अन्याय किया है, जो कुबेरकी पत्नी चित्रसेना-का गुप्तरूपसे अपहरण कर लिया। यही नहीं, इन्होंने तृणबिन्दुके तपोवनमें एक युवतीका वध किया है, अतः अपने इस निन्द्य कर्मके परिणामस्वरूप ही ये इन्द्र स्त्रीभावको प्राप्त हुए हैं ॥ १०३—१०५ ॥

देवा ऊचुः

यदसौ कृतवाञ्शम्भोर्दुर्नयं नाथ दुर्मतिः।
तत्सर्वं साधयिष्यामो वयं शच्या समन्विताः ॥१०६॥
कान्ता धनाधिनाथस्य गूढा तिष्ठति या विभो।
तां च तस्मै प्रदास्यामः सर्वे कृत्वा परां मतिम् ॥१०७॥
त्रयोदश्यां चतुर्दश्यां देवराजः शचीयुतः।
नन्दने चार्चनं कर्ता सर्वदा यक्षरक्षसाम् ॥१०८॥

देवगण बोले—न इन्होंने दुर्बुद्धिसे प्रेरित होकर जो शंकर-प्रिय कुबेरका अपमान किया है, उसके लिये हम सब लोग शचीके साथ कुबेरको प्रसन्न करनेका यत्न करेंगे। विभो! कुबेरकी पत्नी चित्रसेना मन्दराचलपर गुप्तरूपसे रहती है, हम सभी लोग सम्मति करके उसे कुबेरको अर्पित कर देंगे। देवराज इन्द्र भी प्रति त्रयोदशी और चतुर्दशीको नन्दनवनमें शचीको साथ लेकर यक्ष और राक्षसोंकी पूजा करेंगे ॥ १०६—१०८ ॥

ततः शची तदा गूढं चित्रसेनां विगृह्य च।
मुमोच यक्षभवनं प्रियकृष्टानुवर्तिनीम् ॥१०९॥
एतस्मिन्नन्तरे दूतोऽकाले लङ्कां समागतः।
धनेशं कथयामास चित्रसेनासमागमम् ॥११०॥
शच्या सार्कं समायाता तव कान्ता धनाधिप।
सखीं स्वामतुलां प्राप्य चरितार्था बभूव सा ॥१११॥
धनेशोऽपि कृतार्थोऽभूज्जगाम निजवेश्मनि।

तत्पश्चात् शची अपने प्रियतमको कष्टमें डालनेवाली चित्रसेनाको गुप्तरूपसे ले जाकर यक्षराज कुबेरके भवनमें छोड़ आयीं। इसी समय कुबेरका दूत असमयमें ही लङ्कामें पहुँचा और कुबेरसे चित्रसेनाके लौट आनेका समाचार सुनाया—'हे धनाधिप! आपकी प्रियपत्नी चित्रसेना शचीके साथ घर लौट आयी है। वह शची-जैसी अनुपम सखीको पाकर कृतार्थ हो चुकी है।' तब कुबेर भी कृतकृत्य होकर अपने घरको लौट आये। इसके बाद देवगण पुनः ब्रह्मलोकमें जाकर ब्रह्माजीसे प्रार्थना करने लगे ॥ १०९—१११½ ॥

देवा ऊचुः

सर्वमेतत्कृतं ब्रह्मन् प्रसादात्ते न संशयः ॥११२॥
पतिहीना यथा नारी नाथहीनं यथा बलम्।
गोकुलं कृष्णहीनं तु तथेन्द्रेणामरावती ॥११३॥
जपः क्रिया तपो दानं ज्ञानं तीर्थं च वै प्रभो।
वासवस्य समाख्याहि यतः स्त्रीत्वाद्विमुच्यते ॥११४॥

देवगण बोले—ब्रह्मन्! आपकी कृपासे यह सारा काम तो हो गया—इसमें संदेह नहीं। परंतु अब जैसे पतिके बिना नारी, सेनापतिके बिना सेना और श्रीकृष्णके बिना व्रजकी शोभा नहीं होती, उसी प्रकार इन्द्रके बिना अमरावती सुशोभित नहीं होती। प्रभो! अब इन्द्रके लिये कोई जप, क्रिया, तप, दान, ज्ञान और तीर्थ-सेवन आदि

उपाय बताइये, जिससे स्त्रीभावसे इनका उद्धार हो सके ॥ ११२–११४ ॥

ब्रह्मोवाच

निहन्तुं न मुनेः शापं समर्थोऽहं न शंकरः ।
तीर्थं चान्यन्न पश्यामि मुक्त्वैकं विष्णुपूजनम् ॥११५॥
अष्टाक्षरेण मन्त्रेण पूजनं च तथा जपम् ।
करोतु विधिवच्छक्रः स्त्रीत्वाद्येन च मुच्यते ॥११६॥
एकाग्रमनसा शक्र स्नात्वा श्रद्धासमन्वितः ।
ॐ नमो नारायणायेति जप त्वमात्मशुद्धये ॥११७॥
लक्षद्वये कृते जाप्ये स्त्रीभावान्मुच्यसे हरे ।
इति श्रुत्वा तथाकार्षीद्ब्रह्मोक्तं वचनं हरिः ।
स्त्रीभावाच्च विनिर्मुक्तस्तदा विष्णोः प्रसादतः ॥११८॥

ब्रह्माजी बोले—उस मुनिके शापको अन्यथा करनेमें न तो मैं समर्थ हूँ और न भगवान् शंकर ही । इसके लिये एकमात्र भगवान् विष्णुके पूजनको छोड़कर दूसरा कोई उपाय भी सफल नहीं दीख पड़ता । बस, इन्द्र अष्टाक्षर मन्त्रके द्वारा भगवान् विष्णुका विधिपूर्वक पूजन करें और उस मन्त्रका जप करते रहें; इससे वे स्त्रीभावसे मुक्त हो सकते हैं । इन्द्र ! स्नान करके, श्रद्धायुक्त हो, आत्मशुद्धिके लिये एकाग्रचित्तसे 'ॐ नमो नारायणाय'—इस मन्त्रका जप करो । देवेन्द्र ! इस मन्त्रका दो लाख जप हो जानेपर तुम स्त्री-योनिसे मुक्त हो सकते हो । यह सुनकर इन्द्रने ब्रह्माजीकी आज्ञाका यथावत् पालन किया, तब वे भगवान् विष्णुकी कृपासे स्त्रीभावसे छुटकारा पा गये ॥ ११५–११८ ॥

मार्कण्डेय उवाच

इति ते कथितं सर्वं विष्णुमाहात्म्यमुत्तमम् ।
मया भृगुनियुक्तेन कुरु सर्वमतन्द्रितः ॥११९॥
शृण्वन्ति ये विष्णुकथामकल्मषा
वीर्यं हि विष्णोऽखिलकारणस्य ।
ते मुक्तपापाः परदारगामिनो
विशन्ति विष्णोः परमं पदं ध्रुवम् ॥१२०॥

मार्कण्डेयजी कहते हैं—राजन् ! इस प्रकार मैंने भृगुजीकी आज्ञासे तुम्हारे समक्ष परम उत्तम भगवान् विष्णुके माहात्म्यको पूर्णरूपसे सुना दिया । अब तुम आलस्य त्यागकर भगवान् विष्णुकी आराधना करो । जो लोग अखिल जगत्के कारणभूत भगवान् विष्णुके पराक्रमसे सम्बन्ध रखनेवाली उनकी कथाको सुनते हैं, वे यदि परस्त्रीगामी रहे हों तो भी पापहीन एवं कल्मषरहित होकर निश्चय ही भगवान् विष्णुके परमपदको प्राप्त करते हैं ॥ ११९-१२० ॥

सूत उवाच

इति सम्बोधितस्तेन मार्कण्डेयेन पार्थिवः ।
नरसिंहं समाराध्य प्राप्तवान् वैष्णवं पदम् ॥१२१॥
एतत्ते कथितं सर्वं भरद्वाज मुने मया ।
सहस्रानीकचरितं किमन्यत् कथयामि ते ॥१२२॥

सूतजी कहते हैं—मुनिवर मार्कण्डेयजीके द्वारा इस तरह सम्यक् प्रकारसे उपदिष्ट होकर राजा सहस्रानीक भगवान् नृसिंहकी आराधना करके विष्णुके अविनाशी पदको प्राप्त हो गये । भरद्वाज मुने ! इस प्रकार मैंने आपको सम्पूर्ण यह सहस्रानीकचरित्र सुनाया; इसके बाद आपसे और क्या कहूँ ? ॥ १२१-१२२ ॥

कथामिमां यस्तु शृणोति मानवः
पुरातनीं सर्वविमुक्तिदां च ।
सम्प्राप्य स ज्ञानमतीव निर्मलं
तेनैव विष्णुं प्रतिपद्यते जनः ॥१२३॥

इति श्रीनरसिंहपुराणे सहस्रानीकचरितेऽष्टाक्षरमन्त्रकथनं नाम त्रिषष्टितमोऽध्यायः ॥६३॥

जो मानव सब प्रकारसे मोक्ष देनेवाली इस प्राचीन कथाका श्रवण करता है, वह अत्यन्त निर्मल ज्ञान प्राप्त करके उसीके द्वारा भगवान् विष्णुको प्राप्त कर लेता है ॥ १२३ ॥

इस प्रकार श्रीनरसिंहपुराणके अन्तर्गत श्रीसहस्रानीक-चरित्रके अन्तर्गत 'अष्टाक्षर मन्त्रकी महिमाका कथन' नामक तिरसठवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ६३ ॥

चौसठवाँ अध्याय

भगवद्भजनकी श्रेष्ठता और भक्त पुण्डरीकका उपाख्यान

श्रीभरद्वाज उवाच

सत्यं केचित्प्रशंसन्ति तपः शौचं तथापरे ।
सांख्यं केचित्प्रशंसन्ति योगमन्ये प्रचक्षते ॥ १ ॥
ज्ञानं केचित्प्रशंसन्ति समलोष्टाश्मकाञ्चनाः ।
क्षमां केचित्प्रशंसन्ति तथैव च दयार्जवम् ॥ २ ॥
केचिद्दानं प्रशंसन्ति केचिदाहुः परं शुभम् ।
सम्यग्ज्ञानं परं केचित्केचिद्वैराग्यमुत्तमम् ॥ ३ ॥
अग्निष्टोमादिकर्माणि तथा केचित्परं विदुः ।
आत्मध्यानं परं केचित्सांख्यतत्त्वार्थवेदिनः ॥ ४ ॥
धर्मार्थकाममोक्षाणां चतुर्णामिह केवलम् ।
उपायः पदभेदेन बहुधैवं प्रचक्ष्यते ॥ ५ ॥
एवं चावस्थिते लोके कृत्याकृत्यविधौ नराः ।
व्यामोहमेव गच्छन्ति विमुक्ताः पापकर्मभिः ॥ ६ ॥
यदेतेषु परं कृत्यमनुष्ठेयं महात्मभिः ।
वक्तुमर्हसि सर्वज्ञ मम सर्वार्थसाधकम् ॥ ७ ॥

श्रीभरद्वाजजी बोले—सूतजी ! कुछ लोग 'सत्य' को ही पुरुषार्थका साधक बताकर उसकी प्रशंसा करते हैं, दूसरे लोग 'तपस्या' और 'पवित्रता'को उत्तम बताते हैं । कुछ लोग 'सांख्य' और कुछ लोग 'योग' की प्रशंसा करते हैं । ढेले, पत्थर और सोनेको समान समझनेवाले कुछ अन्य लोग 'ज्ञान' को ही पुरुषार्थ-साधनके लिये उत्तम मानते हैं । कुछ लोग 'क्षमा' की प्रशंसा करते हैं तो कुछ लोग 'दया' और 'सरलता' की । कुछ लोग ऐसे हैं, जो 'दान'को उत्तम बताते हैं, कुछ लोग और ही किसी उपायको शुभ कहते हैं। दूसरे लोग 'सम्यक् ज्ञान'को उत्तम मानते हैं और अन्य जन 'वैराग्य'को श्रेष्ठ बताते हैं । कुछ याज्ञिक लोग 'अग्निष्टोम' आदि यज्ञोंको ही सबसे बढ़कर मानते हैं। सांख्यतत्त्वका मर्म जाननेवाले कुछ लोग 'आत्माके ध्यान'को श्रेष्ठ मानते हैं। इस प्रकार यहाँ धर्म, अर्थ, काम और मोक्षरूप चारों पुरुषार्थोंका उपाय ही नाम-भेदसे नाना प्रकारका बताया जाता है। ऐसी स्थितिमें जगत्में पापकर्मसे विमुक्त पुरुष भी कर्तव्याकर्तव्यके विषयमें कुछ निश्चय न हो सकनेके कारण मोहमें ही पड़े रहते हैं । सर्वज्ञ ! इन उपर्युक्त 'सत्य' आदि उपायोंमें जो सबसे उत्तम उपाय हो और महात्माओंद्वारा अवश्यकर्तव्य हो, सब मनोरथोंको पूर्ण करनेवाले उस उपायका आप हमसे वर्णन करें ॥ १–७ ॥

सूत उवाच

श्रूयतामिदमत्यन्तं गूढं संसारमोचनम् ।
अत्रैवोदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ॥ ८ ॥
पुण्डरीकस्य संवादं देवर्षेर्नारदस्य च ।

सूतजी कहते हैं—संसार-बन्धनसे मुक्त करनेवाले इस अत्यन्त गूढ उपायको लोग सुनें। इस विषयमें महात्माजन देवर्षि नारद और भक्तवर पुण्डरीकके संवादरूप इस प्राचीन इतिहासका वर्णन किया करते हैं ॥ ८½ ॥

ब्राह्मणः श्रुतसम्पन्नः पुण्डरीको महामतिः ॥ ९ ॥
आश्रमे प्रथमे तिष्ठन् गुरूणां वशगः सदा ।
जितेन्द्रियो जितक्रोधः संध्योपासनधिष्ठितः ॥१०॥
वेदवेदाङ्गनिपुणः शास्त्रेषु च विचक्षणः ।
समिद्भिः साधुयत्नेन सायं प्रातर्हुताशनम् ॥११॥
ध्यात्वा यज्ञपतिं विष्णुं सम्यगाराधयन् विभुम् ।
तपस्स्वाध्यायनिरतः साक्षाद्ब्रह्मसुतो यथा ॥१२॥
उदकेन्धनपुष्पार्थैरसकृत्तर्पयन् गुरून् ।
मातापितृभ्यां शुश्रूषुर्भिक्षाहारी जनप्रियः ॥१३॥
ब्रह्मविद्यामधीयानः प्राणायामपरायणः ।
तस्य सर्वार्थभूतस्य संसारेऽत्यन्तनिःस्पृहा ॥१४॥
बुद्धिरासीन्महाराज संसारार्णवतारणी ।

महामति पुण्डरीकजी एक विद्वान् ब्राह्मण थे। वे सदा गुरुजनोंके वशमें रहते हुए ब्रह्मचर्य आश्रमके नियमोंका पालन करते थे। उन्होंने अपनी इन्द्रियों और क्रोधको जीत लिया था तथा वे नियमानुसार संध्योपासन किया करते थे । वेद और वेदाङ्गोंमें वे निष्णात थे तथा अन्य शास्त्रोंके भी पण्डित थे । वे प्रतिदिन समिधा एकत्रकर सायं और प्रातःकाल अत्यन्त यत्नपूर्वक अग्निकी उपासना किया करते

थे। साक्षात् ब्रह्मपुत्र नारदजीके समान वे सर्वव्यापी यज्ञपति भगवान् विष्णुकी विधिपूर्वक आराधना करते हुए उनका ध्यान किया करते थे और सदा तपस्या तथा स्वाध्यायमें ही लगे रहते थे। जल, ईंधन और फूल आदि आवश्यक सामान लाकर वे सदा ही गुरुजनोंको संतुष्ट रखते और उनकी अपने माता-पिताके समान शुश्रूषा किया करते थे। भिक्षा माँगकर भोजन करते थे और अपने सद्व्यवहारोंके कारण लोगोंके परम प्रिय हो गये थे। वे सदा ब्रह्मविद्याका अध्ययन और प्राणायामका अभ्यास करते रहते थे। महाराज! समस्त पदार्थोंको वे अपना स्वरूप ही समझते थे; अतः संसारके विषयोंमें उनकी बुद्धि अत्यन्त निःस्पृह हो भवसागरसे पार उतारनेवाली हो गयी थी॥ ९—१४½॥

पितरं मातरं चैव भ्रातॄनथ पितामहान्॥१५॥
पितृव्यान्मातुलांश्चैव सखीन् सम्बन्धिबान्धवान्।
परित्यज्य महोदारस्तृणानीव यथासुखम्॥१६॥
विचचार महीमेतां शाकमूलफलाशनः।
अनित्यं यौवनं रूपमायुष्यं द्रव्यसंचयम्॥१७॥
इति संचिन्तयानेन त्रैलोक्यं लोष्ठवत्स्मृतम्।
पुराणोदितमार्गेण सर्वतीर्थानि वै मुने॥१८॥
गमिष्यामि यथाकालमिति निश्चितमानसः।
गङ्गां च यमुनां चैव गोमतीमथ गण्डकीम्॥१९॥
शतद्रूं च पयोष्णीं च सरयूं च सरस्वतीम्।
प्रयागं नर्मदां चैव महानद्यो नदानपि॥२०॥
गयां च विन्ध्यतीर्थानि हिमवत्प्रभवाणि च।
अन्यानि च महातेजास्तीर्थानि स महाव्रतः॥२१॥
संचचार महाबाहुर्यथाकालं यथाविधि।
कदाचित्प्राप्तवान् वीरः शालग्रामं तपोधनः॥२२॥
पुण्डरीको महाभागः पुण्यकर्मवशानुगः।

भरद्वाजजी! उनका वैराग्य यहाँतक बढ़ गया कि वे महान् उदार पुण्डरीकजी पिता, माता, भाई, पितामह, चाचा, मामा, मित्र, सम्बन्धी तथा बान्धवजनोंको तृणके समान त्यागकर, शाक और मूल-फलादिका आहार करते हुए इस पृथ्वीपर आनन्दपूर्वक विचरने लगे। उन्होंने यौवन, रूप, आयु और धन-संग्रहकी अनित्यताका विचार करके समस्त त्रिभुवनको मट्टीके ढेलेके समान तुच्छ समझ लिया था और अपने मनमें यह निश्चय करके कि 'मैं पुराणोक्त मार्गसे यथासमय सभी तीर्थोंकी यात्रा करूँगा', वे महाबाहु, महातेजस्वी और महाव्रती पुण्डरीकजी गङ्गा, यमुना, गोमती, गण्डकी, शतद्रु, पयोष्णी, सरयू और सरस्वतीके तटपर, प्रयागमें, नर्मदा आदि महानदियों तथा नदोंके तटपर, गयामें तथा विन्ध्याचल और हिमालयके तीर्थोंमें एवं इनके अतिरिक्त अन्यान्य तीर्थोंमें भी यथासमय विधिपूर्वक भ्रमण करते रहे। इसी तरह घूमते हुए, पुण्यकर्मोंके अधीन हो वे तपस्वी वीर महाभाग पुण्डरीक शालग्रामक्षेत्रमें जा पहुँचे॥ १५—२२½॥

आसेव्यमानमृषिभिस्तत्त्वविद्भिस्तपोधनैः॥२३॥
मुनीनामाश्रमं रम्यं पुराणेषु च विश्रुतम्।
भूषितं चक्रनद्या च चक्राङ्कितशिलातलम्॥२४॥
रम्यं विविक्तं विस्तीर्णं सदा चित्तप्रसादकम्।
केचिच्चक्राङ्किताास्तस्मिन् प्राणिनः पुण्यदर्शनाः॥२५॥
विचरन्ति यथाकामं पुण्यतीर्थप्रसङ्गिनः।
तस्मिन् क्षेत्रे महापुण्ये शालग्रामे महामतिः॥२६॥
पुण्डरीकः प्रसन्नात्मा तीर्थानि समसेवत।
स्नात्वा देवह्रदे तीर्थे सरस्वत्यां च सुव्रतः॥२७॥
जातिस्मर्यां चक्रकुण्डे चक्रनद्यामृतेष्वपि।
तथान्यान्यपि तीर्थानि तस्मिन्नेव चचार सः॥२८॥

वह तीर्थ तत्त्वज्ञानी तपस्वी ऋषियोंद्वारा सेवित था। वहाँ मुनियोंके सुरम्य आश्रम थे, जो पुराणोंमें प्रसिद्ध हैं। वह तीर्थ चक्रनदीसे भूषित है और वहाँके शिलाखण्ड भगवान्के चक्रसे चिह्नित हैं। वह तीर्थ जितना ही सुरम्य था, उतना ही एकान्त। उसका विस्तार बड़ा था और वहाँ चित्त स्वतः प्रसन्न रहता था। वहाँपर कुछ चक्रसे चिह्नित प्राणी रहते थे, जिनका दर्शन बहुत ही पावन था। वहाँ पुण्यतीर्थके यात्री यथेष्ट विचरते रहते थे। उस महापवित्र शालग्राम-क्षेत्रमें महामति पुण्डरीकजी प्रसन्नचित्त हो तीर्थ-सेवन करने लगे। वे नियमपूर्वक वहाँ देवह्रद तीर्थमें, पूर्वजन्मकी स्मृति दिलानेवाली सरस्वतीके जलमें, चक्र-कुण्डमें और चक्र-नदी (नारायणी) के जलमें भी स्नान करके उसी क्षेत्रके अन्तर्गत अन्यान्य तीर्थोंमें भ्रमण करते रहते थे॥ २३—२८॥

ततः क्षेत्रप्रभावेण तीर्थानां चैव तेजसा।
मनः प्रसादमगमत्तस्य तस्मिन्महात्मनः॥२९॥

सोऽपि तीर्थे विशुद्धात्मा ध्यानयोगपरायणः ।
तत्रैव सिद्धिमाकाङ्क्षन् समाराध्य जगत्पतिम् ॥३०॥
शास्त्रोक्तेन विधानेन भक्त्या परमया युतः ।
उवास चिरमेकाकी निर्द्वन्द्वः संयतेन्द्रियः ॥३१॥
शाकमूलफलाहारः संतुष्टः समदर्शनः ।
यमैश्च नियमैश्चैव तथा चासनबन्धनैः ॥३२॥
प्राणायामैः सुतीक्ष्णैश्च प्रत्याहारैश्च संततैः ।
धारणाभिस्तथा ध्यानैः समाधिभिरतन्द्रितः ॥३३॥
योगाभ्यासं तदा सम्यक् चक्रे विगतकल्मषः ।
आराध्य देवदेवेशं तद्गतेनान्तरात्मना ॥३४॥
पुण्डरीको महाभागः पुरुषार्थविशारदः ।
प्रसादं परमाकाङ्क्षन् विष्णोस्तद्गतमानसः ॥३५॥

तदनन्तर उस क्षेत्रके प्रभावसे और वहाँके तीर्थोंके तेजसे उन महात्माका चित्त वहाँ बहुत ही शुद्ध एवं प्रसन्न हो गया। इस प्रकार शुद्धचित्त एवं ध्यानयोगमें तत्पर हो, वहाँ ही सिद्धिकी इच्छासे परमभक्तियुक्त हो, वे शास्त्रोक्त विधिसे जगत्पति भगवान् विष्णुकी आराधना करने लगे। अपनी इन्द्रियोंको वशमें करके निर्द्वन्द्व रहते हुए उन्होंने अकेले ही बहुत दिनोंतक वहाँ निवास किया। वे शाक और मूल-फलादिका आहार करते और सदा संतुष्ट रहते थे। उनकी सर्वत्र समान दृष्टि थी। वे यम, नियम, आसन-बन्ध, तीव्र प्राणायाम, निरन्तर प्रत्याहार, धारणा, ध्यान तथा समाधिके द्वारा निरालस्यभावसे भलीभाँति योगाभ्यास करते रहे। इस प्रकार समस्त पुरुषार्थोंके ज्ञाता निष्पाप महामना पुण्डरीकजीने देवदेवेश्वर भगवान् विष्णुमें चित्त लगाकर उनकी आराधना की और उन्हींमें मन लगाये हुए वे उनके परम अनुग्रहकी आकाङ्क्षासे भजन करने लगे॥ २९—३५॥

तस्य तस्मिन्निवसतः शालग्रामे महात्मनः ।
पुण्डरीकस्य राजेन्द्र कालोऽगच्छन्महांस्ततः ॥३६॥
मुने कदाचित्तं देशं नारदः परमार्थवित् ।
जगाम सुमहातेजाः साक्षादादित्यसंनिभः ॥३७॥
तं द्रष्टुकामो देवर्षिः पुण्डरीकं तपोनिधिम् ।
विष्णुभक्तिपरीतात्मा वैष्णवानां हिते रतः ॥३८॥
स दृष्ट्वा नारदं प्राप्तं सर्वतेजःप्रभान्वितम् ।
महामतिं महाप्राज्ञं सर्वागमविशारदम् ॥३९॥
प्राञ्जलिः प्रणतो भूत्वा प्रहृष्टेनान्तरात्मना ।
अर्घं दत्त्वा यथायोग्यं प्रणाममकरोत्ततः ॥४०॥
कोऽयमत्यद्भुताकारस्तेजस्वी हृद्यवेषधृक् ।
आतोद्यहस्तः सुमुखो जटामण्डलभूषणः ॥४१॥
विवस्वानथ वा वह्निरिन्द्रो वरुण एव वा ।
इति संचिन्तयन् विप्रः पप्रच्छ परमद्युतिः ॥४२॥

राजेन्द्र! महात्मा पुण्डरीकको उस शालग्रामक्षेत्रमें निवास करते बहुत समय बीत गया। तब एक दिन साक्षात् सूर्यके समान महातेजस्वी, वैष्णवहितकारी, परमार्थवेत्ता एवं विष्णुभक्तिपरायण देवर्षि नारदजी तपोनिधि पुण्डरीकमुनिको देखनेकी इच्छासे उक्त क्षेत्रमें गये। समस्त आगमोंके ज्ञाता, महाबुद्धिमान्, महाप्राज्ञ, पूर्णतेजस्वी एवं प्रभापुञ्जसे उपलक्षित नारदजीको वहाँ आया देख पुण्डरीकके मनमें बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने विनीतभावसे हाथ जोड़कर उन्हें अर्घ्य निवेदन किया, फिर यथोचित रूपसे उनके चरणोंमें मस्तक झुकाया। तत्पश्चात् परम कान्तिमान् विप्रवर पुण्डरीकजी मन-ही-मन यह सोचने लगे कि 'ये अद्भुत दिव्य शरीरवाले, मनोरमवेषधारी, तेजस्वी महापुरुष कौन हैं? अहो! इनका मुखमण्डल कितना प्रसन्न है! इनके मस्तकपर जटा-जूट सुशोभित हो रहा है। इन्होंने हाथमें वीणा ले रखी है। इस रूपमें ये साक्षात् सूर्य ही तो नहीं हैं? अथवा अग्निदेव, इन्द्र और वरुणमेंसे तो कोई नहीं हैं?' यों सोचते हुए किसी निश्चयपर न पहुँचनेके कारण उन्होंने पूछा॥ ३६—४२॥

पुण्डरीक उवाच

को भवानिह सम्प्राप्तः कुतो वा परमद्युते ।
त्वद्दर्शनं ह्यपुण्यानां प्रायेण भुवि दुर्लभम् ॥४३॥

पुण्डरीकजी बोले—परम कान्तिमान् दिव्य पुरुष! आप कौन हैं और कहाँसे पधारे हैं? इस पृथ्वीपर जिन्होंने कभी पुण्य नहीं किया है, ऐसे लोगोंके लिये आपका दर्शन प्रायः दुर्लभ ही है॥ ४३॥

नारद उवाच

नारदोऽहमनुप्राप्तस्त्वद्दर्शनकुतूहलात् ।
पुण्डरीक हरेर्भक्तस्त्वादृशः सततं द्विज ॥४४॥
स्मृतः सम्भाषितो वापि पूजितो वा द्विजोत्तम ।

पुनाति भगवद्भक्तश्चाण्डालोऽपि यदृच्छया ॥४५॥
दासोऽहं वासुदेवस्य देवदेवस्य शार्ङ्गिणः ।

नारदजी बोले—पुण्डरीक ! मैं नारद हूँ। तुम्हारे दर्शनकी उत्कण्ठासे ही यहाँ आया हूँ। तुम-जैसा निरन्तर भगवद्भक्तिपरायण पुरुष दुर्लभ है। द्विजोत्तम ! भगवद्भक्त पुरुष यदि जातिका चण्डाल हो तो भी वह स्मरणमात्रसे, वार्तालापसे अथवा सम्मानित होकर, अथवा स्वेच्छासे ही लोगोंको पवित्र कर देता है; फिर तुम्हारे-जैसे भक्त ब्राह्मणके सत्सङ्गकी पावनताके विषयमें तो कहना ही क्या है। द्विज ! मैं शार्ङ्ग धनुष धारण करनेवाले देवदेव भगवान् वासुदेवका दास हूँ ॥ ४४-४५½ ॥

इत्युक्तो नारदेनासौ भक्तिपर्याकुलात्मना ॥४६॥
प्रोवाच मधुरं विप्रस्तद्दर्शनसुविस्मितः ।

नारदजीके इस प्रकार अपना परिचय देनेपर उनके दर्शनसे अत्यन्त विस्मित हुए विप्रवर पुण्डरीकजी प्रेम-भक्तिसे विह्वलचित्त होकर मधुर वाणीमें बोले ॥ ४६½ ॥

पुण्डरीक उवाच

धन्योऽहं देहिनामद्य सुपूज्योऽहं सुरैरपि ॥४७॥
कृतार्थाः पितरो मेऽद्य सम्प्राप्तं जन्मनः फलम् ।
अनुगृह्णीष्व देवर्षे त्वद्भक्तस्य विशेषतः ॥४८॥
किं किं करोम्यहं विद्वन् भ्राम्यमाणः स्वकर्मभिः ।
कर्तव्यं परमं गुह्यमुपदेष्टुं त्वमर्हसि ॥४९॥
त्वं गतिः सर्वलोकानां वैष्णवानां विशेषतः ।

पुण्डरीकजीने कहा—आज मैं समस्त देहधारियोंमें धन्य हूँ, देवताओंद्वारा भी सम्माननीय हूँ। आज मेरे पितर कृतार्थ हो गये। मेरा जन्म सफल हो गया। देवर्षे ! मैं आपका भक्त हूँ; आप मुझपर अब विशेषरूपसे अनुग्रह करें। विद्वन् ! मैं अपने पूर्वजन्मकृत कर्मोंसे प्रेरित हो संसारमें भटक रहा हूँ। बताइये, इससे छुटकारा पानेके लिये मैं क्या-क्या करूँ ? मेरे लिये जो परम कर्तव्य हो, वह गोपनीय हो तो भी आप मुझे उसका उपदेश कीजिये। मुने ! यों तो आप समस्त लोकोंको ही सहारा देनेवाले हैं, परंतु वैष्णवोंके लिये तो आप विशेषरूपसे शरणदाता हैं ॥ ४७–४९½ ॥

नारद उवाच

अनेकानीह शास्त्राणि कर्माणि च तथा द्विज ॥५०॥
धर्ममार्गाश्च बहवस्तथैव प्राणिनः स्मृताः ।
वैलक्षण्यं च जगतस्तस्मादेव द्विजोत्तम ॥५१॥

नारदजी बोले—द्विज ! इस जगत्‌में अनेक शास्त्र और अनेक प्रकारके कर्म हैं। इसी तरह यहाँ अनेकों प्राणी हैं और उनके लिये धर्मके मार्ग भी बहुत हैं। द्विजोत्तम ! इसीसे इस जगत्‌में विचित्रता दिखायी देती है ॥ ५०-५१ ॥

अव्यक्ताज्जायते सर्वं सर्वात्मकमिदं जगत् ।
इत्येवं प्राहुरपरे तत्रैव लयमेव च ॥५२॥
आत्मानो बहवः प्रोक्ता नित्याः सर्वगतास्तथा ।
अन्यैर्मतिमतां श्रेष्ठ तत्त्वालोकनतत्परैः ॥५३॥
एवमाद्यनुसंचिन्त्य यथामति यथाश्रुतम् ।
वदन्ति ऋषयः सर्वे नानामतविशारदाः ॥५४॥
शृणुष्वावहितो ब्रह्मन् कथयामि तवानघ ।
परमार्थमिदं गुह्यं घोरसंसारमोचनम् ॥५५॥
अनागतमतीतं च विप्रकृष्टमतीव यत् ।
न गृह्णाति नृणां दृष्टिर्वर्तमानार्थनिश्चिता ॥५६॥
शृणुष्वावहितं तात कथयामि तवानघ ।
यत्प्रोक्तं ब्रह्मणा पूर्वं पृच्छतो मम सुव्रत ॥५७॥
कदाचिद्ब्रह्मलोकस्य पद्मयोनिं पितामहम् ।
प्रणिपत्य यथान्यायं पृष्टवानहमव्ययम् ॥५८॥

कुछ लोगोंका मत है कि यह सम्पूर्ण जगत् सर्वथा अव्यक्तसे उत्पन्न होता है और समय आनेपर उसीमें लीन भी हो जाता है। बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ ! कुछ अन्य तत्त्वदर्शी पुरुष आत्माको अनेक, नित्य एवं सर्वत्र व्यापक मानते हैं। अनघ ! ब्रह्मन् ! इन सब बातोंपर विचार करके नाना मतोंका ज्ञान रखनेवाले समस्त ऋषिगण अपनी बुद्धि और विद्याके अनुसार जिस सिद्धान्तका प्रतिपादन करते हैं, उसे सावधान होकर सुनो; वह सब मैं तुमसे बतलाता हूँ। यह बताया जानेवाला गोप्य परमार्थतत्त्व इस घोरतर संसारसे मुक्ति दिलानेवाला है। मनुष्योंकी दृष्टि प्रायः वर्तमान विषयोंको ही निश्चितरूपसे ग्रहण करती है; वह सुदूरवर्ती भूत और भविष्यको नहीं ग्रहण कर सकती। उत्तम व्रतके पालक एवं पापशून्य तात पुण्डरीक ! इस विषयमें श्रीब्रह्माजीने पहले मेरे प्रश्न करनेपर मुझसे जो कुछ कहा था, वह सब मैं तुम्हें

बता रहा हूँ; तुम ध्यान देकर सुनो। एक समयकी बात है, ब्रह्मलोकमें विराजमान अविनाशी कमलयोनि ब्रह्माजीको प्रणाम करके मैंने उनसे यथोचित रूपसे प्रश्न किया ॥ ५२–५८ ॥

नारद उवाच

किं तज्ज्ञानं परं देव कश्च योगः परस्तथा ।
एतन्मे तत्त्वतः सर्वं त्वमाचक्ष्व पितामह ॥५९॥

नारदजी बोले—देव ! लोकपितामह ! सबसे उत्तम ज्ञान और सबसे उत्कृष्ट योग कौन-सा है ? इस विषयमें सारी बातें आप मुझे ठीक-ठीक बतायें ॥ ५९ ॥

ब्रह्मोवाच

यः परः प्रकृतेः प्रोक्तः पुरुषः पञ्चविंशकः ।
स एव सर्वभूतानां नर इत्यभिधीयते ॥६०॥
नराज्जातानि तत्त्वानि नाराणीति ततो विदुः ।
तान्येव चायनं तस्य तेन नारायणः स्मृतः ॥६१॥
नारायणाज्जगत्सर्वं सर्गकाले प्रजायते ।
तस्मिन्नेव पुनस्तच्च प्रलये सम्प्रलीयते ॥६२॥
नारायणः परं ब्रह्म तत्त्वं नारायणः परम् ।
नारायणः परं ज्योतिरात्मा नारायणः परः ॥६३॥
परादपि परश्चासौ तस्मान्नातिपरं मुने ।
यच्च किंचिज्जगत्यस्मिन् दृश्यते श्रूयतेऽपि वा ॥६४॥
अन्तर्बहिश्च तत्सर्वं व्याप्य नारायणः स्थितः ।
एवं विदित्वा तं देवाः साकारं व्याहरन्मुहुः ॥६५॥
नमो नारायणायेति ध्यात्वा चानन्यमानसाः ।
किं तस्य दानैः किं तीर्थैः किं तपोभिः किमध्वरैः ॥६६॥
यो नित्यं ध्यायते देवं नारायणमनन्यधीः ।
एतज्ज्ञानं वरं नातो योगश्चैव परस्तथा ॥६७॥
परस्परविरुद्धार्थैः किमन्यैः शास्त्रविस्तरैः ।
बहवोऽपि यथा मार्गा विशन्त्येकं महत्पुरम् ॥६८॥
तथा ज्ञानानि सर्वाणि प्रविशन्ति तमीश्वरम् ।

ब्रह्माजी बोले—जो तेईस विकारोंके कारणभूत चौबीसवें तत्त्व प्रकृतिसे भिन्न पचीसवाँ तत्त्व है, वही सम्पूर्ण प्राणिशरीरोंमें 'नर' (पुरुष या आत्मा) कहलाता है। सम्पूर्ण तत्त्व नरसे उत्पन्न हैं, इसलिये 'नार' कहलाते हैं। ये नार जिनके अयन (आश्रय) हैं, अर्थात् जो इनमें व्यापक हैं, वे भगवान् 'नारायण' कहे जाते हैं। सृष्टिकालमें सम्पूर्ण जगत् भगवान् नारायणसे ही प्रकट होता है और प्रलयके समय फिर उन्हींमें लीन हो जाता है। नारायण ही परब्रह्म हैं, नारायण ही परम तत्त्व हैं, नारायण ही परमज्योति और नारायण ही परम आत्मा हैं। मुने ! वे भगवान् नारायण परसे भी पर हैं। उनसे बढ़कर या उनसे भिन्न कुछ भी नहीं है। इस जगत्में जो कुछ देखा या सुना जाता है, सबको बाहर और भीतरसे व्याप्त करके भगवान् नारायण स्थित हैं। इस प्रकार उन्हें साकार वस्तुओंमें व्यापक जानकर ही देवताओंने बार-बार उनको 'साकार' कहा है तथा '🕉 नमो नारायणाय'—इस मन्त्रका ध्यान (मानसिक जप) करते हुए अनन्यभावसे उनमें मन लगाया है। जो अनन्यचित्त हो सदा भगवान् नारायणका ध्यान करता है, उसको दान, तीर्थसेवन, तपस्या और यज्ञोंसे क्या काम है ? भगवान् नारायणका ध्यान ही सर्वोत्तम ज्ञान है तथा इससे बढ़कर दूसरा कोई योग भी नहीं है। परस्परविरुद्ध अर्थको व्यक्त करनेवाले दूसरे-दूसरे शास्त्रोंके विस्तारसे क्या लाभ ? जिस प्रकार एक ही बड़े नगरमें बहुत-से मार्गोंका प्रवेश होता है, उसी प्रकार भिन्न-भिन्न शास्त्रोंके सम्पूर्ण ज्ञान उन परमेश्वर नारायणमें प्रवेश करते हैं ॥ ६०–६८½ ॥

स हि सर्वगतो देवः सूक्ष्मोऽव्यक्तः सनातनः ॥६९॥
जगदादिरनाद्यन्तः स्वयम्भूर्भूतभावनः ।
विष्णुर्विभुरचिन्त्यात्मा नित्यः सदसदात्मकः ॥७०॥
वासुदेवो जगद्वासः पुराणः कविरव्ययः ।
यस्मात्प्राप्तं स्थितिं कृत्स्नं त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥७१॥
तस्मात्स भगवान्देवो विष्णुरित्यभिधीयते ।
यस्माद्वा सर्वभूतानां तत्त्वाद्यानां युगक्षये ॥७२॥
तस्मिन्निवासः संसर्गे वासुदेवस्ततस्तु सः ।
तमाहुः पुरुषं केचित्केचिदीश्वरमव्ययम् ॥७३॥
विज्ञानमात्रं केचिच्च केचिद्ब्रह्म परं तथा ।
केचित्कालमनाद्यन्तं केचिज्जीवं सनातनम् ॥७४॥
केचिच्च परमात्मानं केचिच्चैवमनामयम् ।
केचित्क्षेत्रज्ञमित्याहुः केचित्षड्विंशकं तथा ॥७५॥
अङ्गुष्ठमात्रं केचिच्च केचित्पद्मरजोपमम् ।
एते चान्ये च मुनिभिः संज्ञाभेदाः पृथग्विधाः ॥७६॥

शास्त्रेषु कथिता विष्णोर्लोकव्यामोहकारकाः।
एकं यदि भवेच्छास्त्रं ज्ञानं निस्संशयं भवेत् ॥७७॥
बहुत्वादिह शास्त्राणां ज्ञानतत्त्वं सुदुर्लभम्।
आलोड्य सर्वशास्त्राणि विचार्य च पुनः पुनः ॥७८॥
इदमेकं सुनिष्पन्नं ध्येयो नारायणः सदा।
त्यक्त्वा व्यामोहकान् सर्वान् तस्माच्छास्त्रार्थविस्तरान्॥
अनन्यचेता ध्यायस्व नारायणमतन्द्रितः।
एवं ज्ञात्वा तु सततं देवदेवं तमव्ययम् ॥८०॥
क्षिप्रं यास्यसि तत्रैव सायुज्यं नात्र संशयः।

वे भगवान् विष्णु अव्यक्तरूपसे सर्वत्र व्याप्त हैं, सूक्ष्म तत्त्व हैं, सदा रहनेवाले सनातन पुरुष हैं, सम्पूर्ण जगत्के आदिकारण हैं; परंतु उनका न तो आदि है न अन्त ही। स्वयं वे किसी दूसरेसे उत्पन्न नहीं हैं, अतएव 'स्वयम्भू' हैं, किंतु इस सम्पूर्ण भूतप्राणियोंको स्वयं ही प्रकट करते हैं। वे विभु, अचिन्त्य, नित्य और कार्य-कारणस्वरूप हैं। सम्पूर्ण जगत्का उनमें ही निवास है, इसलिये वे 'वासुदेव' कहे गये हैं। वे पुराणपुरुष, त्रिकालदर्शी और अविकारी हैं। यह सम्पूर्ण चराचरमय त्रिभुवन उन्हीं भगवान्के द्वारा व्याप्त होनेसे स्थित है, इसलिये वे 'विष्णु' कहलाते हैं। अथवा युगका क्षय होनेपर महत्तत्त्व आदि समस्त भूतोंका उन्हीं सृष्टिके आश्रयभूत परमात्मामें निवास होता है, इसलिये वे 'वासुदेव' कहे गये हैं। कुछ लोग उनको पुरुष (आत्मा) कहते हैं और कुछ लोग अविनाशी ईश्वर बताते हैं। कुछ अन्य लोग उन्हें केवल 'विज्ञानस्वरूप' मानते हैं, कितने ही उन्हें परब्रह्म कहते हैं। कुछ विचारक उन्हें आदि-अन्तरहित 'काल' कहते हैं और कुछ मनुष्य उनको 'सनातन जीव' मानते हैं। कुछ लोग 'परमात्मा' कहते हैं, कुछ उन्हें एक 'निरामय तत्त्व' मानते हैं, कुछ विद्वान् उन्हें 'क्षेत्रज्ञ' कहते हैं और कुछ उन्हें तेईस विकारोंके कारण चौबीसवें तत्त्व प्रकृति और पचीसवें तत्त्वरूप पुरुषसे भिन्न 'छब्बीसवाँ तत्त्व' (पुरुषोत्तम) मानते हैं। कुछ लोग आत्माको अँगूठेके बराबर बताते हैं और कुछ विद्वान् कमल-पुष्पकी धूलिके एक कणके बराबर 'अणु' मानते हैं। ऊपर भगवान् विष्णुके जिन नामोंका उल्लेख किया गया है, ये तथा अन्य भी बहुत-से भिन्न-भिन्न नाम मुनियों-द्वारा शास्त्रोंमें कहे गये हैं, जो साधारण लोगोंमें भेद-भ्रमका उत्पादन कर उन्हें मोहमें डालनेवाले हैं। यदि एक ही शास्त्र होता तो सबको संदेहरहित निश्चयात्मक ज्ञान होता। किंतु यहाँ तो बहुतेरे शास्त्र हैं और सबका अलग-अलग सिद्धान्त है; अतः ज्ञानका तत्त्व बड़ा ही दुर्ज्ञेय हो गया है। परंतु मैंने सम्पूर्ण शास्त्रोंका मथन करके विचार किया तो एक यही बात सब सिद्धान्तोंके साररूपसे ज्ञात हुई कि सदा 'भगवान् नारायणका ध्यान करना चाहिये।' इसलिये मोहमें डालनेवाले सम्पूर्ण शास्त्र-विस्तारोंका त्याग करके एकचित्त होकर उत्साहपूर्वक भगवान् नारायणका ध्यान करो। इस प्रकार सतत चिन्तनके द्वारा उन अविनाशी देवदेव नारायणका तत्त्व जानकर तुम शीघ्र ही उनमें सायुज्य-मुक्ति प्राप्त कर लोगे, इसमें संदेह नहीं है ॥ ६९—८०½ ॥

श्रुत्वेदं ब्रह्मणा प्रोक्तं ज्ञानयोगं सुदुर्लभम् ॥८१॥
ततोऽहमासं विप्रेन्द्र नारायणपरायणः।
नमो नारायणायेति ये विदुर्ब्रह्म शाश्वतम् ॥८२॥
अन्तकाले जपन्तस्ते यान्ति विष्णोः परं पदम्।
तस्मान्नारायणस्तात परमात्मा सनातनः ॥८३॥
अनन्यमनसा नित्यं ध्येयस्तत्त्वविचिन्तकैः।
नारायणो जगद्व्यापी परमात्मा सनातनः ॥८४॥
जगतां सृष्टिसंहारपरिपालनतत्परः।
श्रवणात्पठनाच्चैव निदिध्यासनतत्परैः ॥८५॥
आराध्यः सर्वथा ब्रह्मन् पुरुषेण हितैषिणा।
निःस्पृहा नित्यसंतुष्टा ज्ञानिनः संयतेन्द्रियाः ॥८६॥
निर्ममा निरहंकारा रागद्वेषविवर्जिताः।
अपक्षपतिताः शान्ताः सर्वसंकल्पवर्जिताः ॥८७॥
ध्यानयोगपरा ब्रह्मन् ते पश्यन्ति जगत्पतिम्।
त्यक्तत्रया महात्मानो वासुदेवं हरिं गुरुम् ॥८८॥
कीर्तयन्ति जगन्नाथं ते पश्यन्ति जगत्पतिम्।
तस्मात्त्वमपि विप्रेन्द्र नारायणपरो भव ॥८९॥

विप्रेन्द्र! इस प्रकार ब्रह्माजीके कहे हुए इस परम दुर्लभ ज्ञानयोगको सुनकर मैं तभीसे भगवान् नारायणकी परिचर्यामें लग गया। जो लोग 'ॐ नमो नारायणाय'— इस सनातन ब्रह्मस्वरूप मन्त्रको जानते हैं, वे अन्तकालमें इसका जप करते हुए विष्णुके परमधामको प्राप्त कर लेते हैं। अतः तात! तत्त्व-विचार करनेवाले पुरुषोंको सदा ही सनातन परमात्मा नारायणका अनन्यचित्तसे ध्यान करना चाहिये।

भगवान् नारायण जगद्व्यापी सनातन परमेश्वर हैं। ये भिन्न-भिन्न रूपसे सम्पूर्ण लोकोंके सृष्टि, पालन तथा संहार-कार्यमें लगे रहते हैं। इनके नाम, गुण एवं लीलाओंका श्रवण और कीर्तन करते हुए उनके ध्यानमें संलग्न हो उनकी आराधना करनी चाहिये। ब्रह्मन्! अपना हित चाहनेवाले पुरुषके लिये सर्वथा भगवान् नारायणकी आराधना ही कर्तव्य है। विप्रवर! जो लोग निःस्पृह, नित्य-संतुष्ट, ज्ञानी, जितेन्द्रिय और ममता-अहंता, राग-द्वेष आदि विकारोंसे रहित हैं तथा जो पक्षपातशून्य, शान्त एवं सब प्रकारके संकल्पोंसे वर्जित हैं, वे भगवान्के ध्यानयोगमें तत्पर हो उन जगदीश्वरका साक्षात्कार कर लेते हैं। जो महात्मा त्रिभुवनसे नाता तोड़कर जगद्गुरु जगन्नाथ भगवान् वासुदेवका कीर्तन करते हैं, वे उन जगत्पतिका दर्शन पा जाते हैं। इसलिये विप्रवर! तुम भी भगवान् नारायणकी समाराधनामें तत्पर हो जाओ ॥८१–८९॥

तदन्यः को महोदारः प्रार्थितं दातुमीश्वरः ।
हेलया कीर्तितो यो वै स्वं पदं दिशति द्विज ॥९०॥
अपि कार्यस्त्वया चैव जपः स्वाध्याय एव च ।
तमेवोद्दिश्य देवेशं कुरु नित्यमतन्द्रितः ॥९१॥
किं तत्र बहुभिर्मन्त्रैः किं तत्र बहुभिर्व्रतैः ।
नमो नारायणायेति मन्त्रः सर्वार्थसाधकः ॥९२॥
चीरवासा जटाधारी त्रिदण्डी मुण्ड एव वा ।
भूषितो वा द्विजश्रेष्ठ न लिङ्गं धर्मकारणम् ॥९३॥
ये नृशंसा दुरात्मानः पापाचाररताः सदा ।
तेऽपि यान्ति परं स्थानं नरा नारायणाश्रयाः ॥९४॥
जन्मान्तरसहस्रेषु यस्य स्याद्बुद्धिरीदृशी ।
दासोऽहं वासुदेवस्य देवदेवस्य शार्ङ्गिणः ॥९५॥
प्रयाति विष्णुसालोक्यं पुरुषो नात्र संशयः ।
किं पुनस्तद्गतप्राणः पुरुषः संयतेन्द्रियः ॥९६॥

द्विज! जो अवहेलनापूर्वक नाम लेनेपर भी भक्तको अपना परमधाम दे देते हैं, उन भगवान् नारायणके सिवा दूसरा कौन ऐसा महान् उदार है, जो माँगी हुई वस्तुको देनेमें समर्थ हो? तुम्हें जप अथवा स्वाध्याय—जो कुछ भी करना हो, उसे उन देवेश्वर भगवान् नारायणके उद्देश्यसे ही सदा आलस्य त्यागकर करते रहो। बहुत-से मन्त्र और व्रतोंसे क्या काम? 'ॐ नमो नारायणाय'—यह मन्त्र ही सब मनोरथोंको सिद्ध करनेवाला है। द्विजश्रेष्ठ! कोई चीर वस्त्र पहननेवाला, जटा धारण करनेवाला, त्रिदण्डी, सदा माथा मुँड़ाये रहनेवाला अथवा तरह-तरहके उपकरणोंसे विभूषित ही क्यों न हो, उसके ये बाह्य चिह्न धर्मके कारण नहीं हो सकते; किंतु जो मनुष्य भगवान् नारायणकी शरणमें जा चुके हैं, वे पहले निर्दयी, दुष्ट और सदा पापरत रहे हों तो भी भगवान्के परमधामको पधारते हैं। हजारों जन्मोंमें भी जिसकी ऐसी बुद्धि हो जाय कि 'मैं देवदेव, शार्ङ्गधनुषधारी भगवान् वासुदेवका दास हूँ', वह मनुष्य निस्संदेह भगवान् विष्णुके सालोक्यको प्राप्त होता है; फिर जो पुरुष जितेन्द्रिय होकर सदा भगवान्में ही अपने प्राणोंको लगाये रहता है, उसके लिये तो कहना ही क्या है ॥९०–९६॥

सूत उवाच

इत्युक्त्वा देवदेवर्षिस्तत्रैवान्तरधीयत ।
परोपकारनिरतस्त्रैलोक्यस्यैकभूषणः ॥९७॥
पुण्डरीकोऽपि धर्मात्मा नारायणपरायणः ।
नमोऽस्तु केशवायेति पुनः पुनरुदीरयन् ॥९८॥
प्रसीदस्व महायोगिन्निदमुच्चार्य सर्वदा ।
हृत्पुण्डरीके गोविन्दं प्रतिष्ठाप्य जनार्दनम् ॥९९॥
तपस्सिद्धिकरेऽरण्ये शालग्रामे तपोधनः ।
उवास चिरमेकाकी पुरुषार्थविचक्षणः ॥१००॥
स्वप्नेऽपि केशवादन्यन्न पश्यति महातपाः ।
निद्रापि तस्य नैवासीत्पुरुषार्थविरोधिनी ॥१०१॥
तपसा ब्रह्मचर्येण शौचेन च विशेषतः ।
जन्मजन्मान्तरारूढसंस्कारेण च स द्विजः ॥१०२॥
प्रसादाद्देवदेवस्य सर्वलोकैकसाक्षिणः ।
अवाप परमां सिद्धिं वैष्णवीं वीतकल्मषः ॥१०३॥
सिंहव्याघ्रास्तथान्येऽपि मृगाः प्राणिविहिंसकाः ।
विरोधं सहजं हित्वा समेतास्तस्य संनिधौ ।
निवसन्ति द्विजश्रेष्ठ प्रशान्तेन्द्रियवृत्तयः ॥१०४॥

सूतजी कहते हैं—सदा दूसरोंके ही उपकारमें लगे रहनेवाले त्रिभुवनभूषण देवर्षि नारदजी उपर्युक्त बातें बताकर वहाँपर अन्तर्धान हो गये। अब धर्मात्मा पुण्डरीक भी एकमात्र भगवान् नारायणके भजनमें तत्पर हो बार-बार इस प्रकार

उच्चारण करने लगे—'भगवान् केशवको नमस्कार है; हे महायोगिन्! आप मुझपर प्रसन्न हों।' निरन्तर यों कहते हुए पुरुषार्थ-साधनमें कुशल वे तपस्वी पुण्डरीकजी अपने हृदय-कमलके आसनपर जनार्दन भगवान् गोविन्दको स्थापित-कर तपस्याकी सिद्धि करनेवाले उस 'शालग्राम' नामक तपोवनमें बहुत कालतक अकेले ही रहे। महातपस्वी पुण्डरीक स्वप्नमें भी भगवान् केशवके सिवा दूसरा कुछ नहीं देखते थे। उनकी नींद भी उन्हें पुरुषार्थ-साधनमें बाधा नहीं देती थी। उन पापरहित द्विजवर पुण्डरीकने तपस्या, ब्रह्मचर्य तथा विशेषतः शौचाचारके पालनसे और जन्म-जन्मान्तरोंकी साधनासे सुदृढ़ हुए भगवद्भक्तिसाधक संस्कारसे सम्पूर्ण लोकों-के एकमात्र साक्षी देवदेव भगवान् विष्णुकी कृपाद्वारा परम उत्तम वैष्णवी सिद्धि प्राप्त कर ली। उनके निकट सिंह, व्याघ्र तथा दूसरे-दूसरे हिंसक जीव आपसके स्वाभाविक वैर-विरोधको त्याग एक साथ मिलकर रहते थे। द्विजवर भरद्वाजजी! उनके समीप उन हिंसक जन्तुओंकी इन्द्रिय-वृत्तियाँ अत्यन्त शान्त रहती थीं॥ ९७–१०४॥

ततः कदाचिद्भगवान् पुण्डरीकस्य धीमतः।
प्रादुरासीज्जगन्नाथः पुण्डरीकायतेक्षणः॥१०५॥
शङ्खचक्रगदापाणिः पीतवासाः स्रगुज्ज्वलः।
श्रीवत्सवक्षाः श्रीवासः कौस्तुभेन विभूषितः॥१०६॥
आरुह्य गरुडं श्रीमानञ्जनाचलसंनिभः।
मेरुशृङ्गमिवारूढः कालमेघस्तडिद्द्युतिः॥१०७॥
राजतेनातपत्रेण मुक्तादामविलम्बिना।
विराजमानो देवेशश्चामरव्यजनादिभिः॥१०८॥

तत्पश्चात् एक दिन बुद्धिमान् पुण्डरीकजीके समक्ष जगदीश्वर भगवान् नारायण प्रकट हुए। उनके नेत्र कमल-दलके समान विशाल थे। उनके हाथोंमें शङ्ख, चक्र और गदा सुशोभित थी। उन्होंने पीताम्बर धारण कर रक्खा था। दिव्य पुष्पोंकी माला उनकी शोभा बढ़ा रही थी। उनके वक्षःस्थलमें श्रीवत्स-चिह्न और लक्ष्मीका निवास था। वे कौस्तुभमणिसे विभूषित थे। कज्जलगिरिके समान श्यामवर्ण एवं पीताम्बरधारी भगवान् विष्णु सुनहली कान्तिवाले गरुड-पर आरूढ़ हो इस प्रकार सुशोभित होते थे, मानो मेरुगिरिके शिखरपर बिजलीकी कान्तिसे युक्त श्याममेघ शोभा पा रहा हो। भगवान्के ऊपर रजतमय श्वेत छत्र तना था, जिसमें मोतियोंकी झालरें लगी थीं। उस समय उस छत्रसे तथा चँवर-व्यजन आदिसे उन देवेश्वरकी बड़ी शोभा हो रही थी॥ १०५–१०८॥

तं दृष्ट्वा देवदेवेशं पुण्डरीकः कृताञ्जलिः।
पपात शिरसा भूमौ साध्वसावनतो द्विजः॥१०९॥
पिबन्निव हृषीकेशं नयनाभ्यां समाकुलः।
जगाम महतीं तृप्तिं पुण्डरीकस्तदानघः॥११०॥
तमेवालोकयन् वीरश्चिरप्रार्थितदर्शनः।
ततस्तमाह भगवान् पद्मनाभस्त्रिविक्रमः॥१११॥

उन देवदेवेश्वर भगवान् नारायणका प्रत्यक्ष दर्शन पाकर पुण्डरीकने दोनों हाथ जोड़ लिये। आदरमिश्रित भयसे उनका मस्तक झुक गया। उन्होंने धरतीपर माथा टेक दिया—साष्टाङ्ग प्रणाम किया। वे विह्वल होकर उन भगवान् हृषीकेशकी ओर आँखें फाड़-फाड़कर इस प्रकार देखने लगे, मानो उन्हें पी जायँगे। जिनके दर्शनके लिये वे चिरकालसे प्रार्थना कर रहे थे, उन भगवान्को आज सामने पाकर उन्हींकी ओर निर्निमेष नयनोंसे देखते हुए पापरहित धीरचित्त पुण्डरीकजी-को आज बड़ी ही तृप्ति हुई। तब तीन पगोंसे त्रिलोकीको नाप लेनेवाले भगवान् पद्म-नाभने पुण्डरीकसे कहा—॥१०९-१११॥

प्रीतोऽस्मि वत्स भद्रं ते पुण्डरीक महामते।
वरं वृणीष्व दास्यामि यत्ते मनसि वर्तते॥११२॥

'वत्स पुण्डरीक! तुम्हारा कल्याण हो। महामते! मैं तुमपर बहुत प्रसन्न हूँ। तुम्हारे मनमें जो अभिलाषा हो, उसीको वरके रूपमें माँग लो; उसे मैं अवश्य दूँगा'॥ ११२॥

सूत उवाच

एतच्छ्रुत्वा तु वचनं देवदेवेन भाषितम्।
इदं विज्ञापयामास पुण्डरीको महामतिः॥११३॥

सूतजी कहते हैं—देवदेव नारायणके कहे हुए इस वचनको सुनकर महामति पुण्डरीकने उनसे यों निवेदन किया॥ ११३॥

पुण्डरीक उवाच

क्वाहमत्यन्तदुर्बुद्धिः क्व चात्महितवीक्षणम्।
यद्धितं मम देवेश तदाज्ञापय माधव॥११४॥

पुण्डरीक बोले—देवेश्वर ! कहाँ मुझ-जैसा अत्यन्त दुर्बुद्धि पुरुष और कहाँ अपने वास्तविक हितको देखनेका कार्य ? अतः माधव ! मेरे लिये जो हितकर हो, उसके लिये आप ही कृपापूर्वक आज्ञा करें ॥ ११४ ॥

एवमुक्तोऽथ भगवान् सुप्रीतः पुनरब्रवीत् ।
पुण्डरीकं महाभागं कृताञ्जलिमुपस्थितम् ॥११५॥

उनके यों कहनेपर भगवान् बहुत ही प्रसन्न हुए और अपने सामने हाथ जोड़े खड़े हुए महाभाग पुण्डरीकसे बोले ॥ ११५ ॥

श्रीभगवानुवाच

आगच्छ कुशलं तेऽस्तु मयैव सह सुव्रत ।
मद्रूपधारी नित्यात्मा ममैव पार्षदो भव ॥११६॥

श्रीभगवान्ने कहा—सुव्रत ! तुम्हारा कल्याण हो; तुम मेरे साथ ही आ जाओ और मेरे ही समान रूप धारण-कर मेरे नित्य-पार्षद हो जाओ ॥ ११६ ॥

सूत उवाच

एवमुक्तवतिं प्रीत्या श्रीधरे भक्तवत्सले ।
देवदुन्दुभयो नेदुः पुष्पवृष्टिः पपात च ॥११७॥
देवाः सेन्द्रास्तथा सिद्धाः साधु साध्वित्यथाब्रुवन्।
जगुश्च सिद्धगन्धर्वाः किंनराश्च विशेषतः ॥११८॥
अथैनं समुपादाय वासुदेवो जगत्पतिः ।
जगाम गरुडारूढः सर्वदेवनमस्कृतः ॥११९॥
तस्मात्त्वमपि विप्रेन्द्र विष्णुभक्तिसमन्वितः ।
तच्चित्तस्तद्गतप्राणस्तद्भक्तानां हिते रतः ॥१२०॥
अर्चयित्वा यथायोगं भजस्व पुरुषोत्तमम् ।
शृणुष्व तत्कथाः पुण्याः सर्वपापप्रणाशिनीः॥१२१॥
येनोपायेन विप्रेन्द्र विष्णुः सर्वेश्वरेश्वरः ।
प्रीतो भवति विश्वात्मा तत्कुरुष्व सुविस्तरम् ॥१२२॥
अश्वमेधसहस्रेण वाजपेयशतैरपि ।
नाप्नुवन्ति गतिं पुण्यां नारायणपराङ्मुखाः॥१२३॥

सूतजी कहते हैं—भक्तवत्सल भगवान् श्रीधरके प्रेम-पूर्वक यों कहनेपर देवताओंकी दुन्दुभियाँ बज उठीं और वहाँ आकाशसे फूलोंकी वर्षा होने लगी । उस समय इन्द्र आदि सभी देवता और सिद्धगण 'यह बहुत अच्छा हुआ, बहुत अच्छा हुआ'—इस प्रकार कहकर साधुवाद देने लगे । सिद्ध, गन्धर्व और किंनरगण विशेषरूपसे यशोगान करने लगे । इधर सर्वदेववन्दित जगदीश्वर भगवान् वासुदेव पुण्डरीकको साथ ले, गरुडपर आरूढ़ हो, वैकुण्ठधामको चले गये । इसलिये विप्रवर भरद्वाज ! आप भी विष्णुभक्तिसे युक्त हो, अपने मन और प्राणोंको भगवान्में ही लगाकर उनके भक्तोंके हित-साधनमें तत्पर रहिये और यथाशक्ति भगवान्का पूजन करते हुए उन पुरुषोत्तमका भजन कीजिये । समस्त पापोंको नष्ट करनेवाली भगवान्की कथाएँ सदा सुनते रहिये । विप्रवर ! अधिक क्या कहूँ, सर्वेश्वरेश्वर विश्वात्मा भगवान् विष्णु जिस उपायसे प्रसन्न हों, उसीको आप विस्तारपूर्वक करें । भगवान् नारायणसे विमुख हुए पुरुष हजारों अश्वमेध और सैकड़ों वाजपेय करनेसे भी पावन गतिको नहीं प्राप्त कर सकते ॥ ११७–१२३ ॥

अजरममरमेकं ध्येयमाद्यन्तशून्यं
सगुणविगुणमाद्यं स्थूलमत्यन्तसूक्ष्मम् ।
निरुपममुपमेयं योगिनां ज्ञानगम्यं
त्रिभुवनगुरुमीशं त्वां प्रपन्नोऽस्मि विष्णो ।१२४।

इति श्रीनरसिंहपुराणे पुण्डरीकनारदसंवादे चतुःषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६४ ॥

(भगवान्से इस प्रकार प्रार्थना करनी चाहिये—)'भगवन् विष्णो ! आप अजर, अमर, अद्वितीय, सबके ध्यान करने-योग्य, आदि-अन्तसे रहित, सगुण-निर्गुण, स्थूल-सूक्ष्म और अनुपम होकर भी उपमेय हैं । योगियोंको ज्ञानके द्वारा आपके स्वरूपका अनुभव होता है तथा आप इस त्रिभुवनके गुरु और परमेश्वर हैं; अतः मैं आपकी शरणमें आया हूँ ॥ १२४ ॥

इस प्रकार श्रीनरसिंहपुराणमें 'पुण्डरीक-नारद-संवाद' विषयक चौसठवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ६४ ॥

पैंसठवाँ अध्याय

भगवत्सम्बन्धी तीर्थ और उन तीर्थोंसे सम्बन्ध रखनेवाले भगवान्‌के नाम

भरद्वाज उवाच

त्वत्तो हि श्रोतुमिच्छामि गुह्यक्षेत्राणि वै हरेः ।
नामानि च सुगुह्यानि वद पापहराणि च ॥ १ ॥

भरद्वाजजी बोले—सूतजी ! अब मैं आपसे भगवान् विष्णुके गुप्त तीर्थोंका और उन तीर्थोंसे सम्बन्ध रखनेवाले भगवान्‌के गुप्त नामोंका वर्णन सुनना चाहता हूँ; कृपया आप उन पापनाशक नामोंका मेरे समक्ष वर्णन कीजिये ॥ १ ॥

सूत उवाच

मन्दरस्थं हरिं देवं ब्रह्मा पृच्छति केशवम् ।
भगवन्तं देवदेवं शङ्खचक्रगदाधरम् ॥ २ ॥

सूतजी बोले—एक समय मन्दराचलपर विराजमान शङ्ख-चक्र-गदाधारी देवदेव भगवान् विष्णुसे श्रीब्रह्माजीने पूछा ॥ २ ॥

ब्रह्मोवाच

केषु केषु च क्षेत्रेषु द्रष्टव्योऽसि मया हरे ।
भक्तैरन्यैः सुरश्रेष्ठ मुक्तिकामैर्विशेषतः ॥ ३ ॥
यानि ते गुह्यनामानि क्षेत्राणि च जगत्पते ।
तान्यहं श्रोतुमिच्छामि त्वत्तः पद्मायतेक्षण ॥ ४ ॥
किं जपन् सुगतिं याति नरो नित्यमतन्द्रितः ।
त्वद्भक्तानां हितार्थाय तन्मे वद सुरेश्वर ॥ ५ ॥

ब्रह्माजी बोले—सुरश्रेष्ठ ! हरे ! मुझे तथा मुक्ति चाहनेवाले अन्यान्य भक्तोंको किन-किन क्षेत्रोंमें जाकर आपका विशेषरूपसे दर्शन करना चाहिये । जगत्पते ! कमललोचन ! आपके जो-जो गुप्त तीर्थ और नाम हैं, उन्हें मैं आपके ही मुखसे सुनना चाहता हूँ । सुरेश्वर ! मनुष्य आलस्य त्यागकर प्रतिदिन किसका जप करनेसे सद्गतिको प्राप्त हो सकता है ? अपने भक्तोंका हित-साधन करनेके लिये यह बात आप हमें बताइये ॥ ३—५ ॥

श्रीभगवानुवाच

शृणुष्वावहितो ब्रह्मन् गुह्यनामानि मेऽधुना ।
क्षेत्राणि चैव गुह्यानि तव वक्ष्यामि तत्त्वतः ॥ ६ ॥

श्रीभगवान् बोले—ब्रह्मन् ! तुम सावधान होकर सुनो; मेरे जो गुह्य नाम और क्षेत्र हैं, उन्हें मैं ठीक-ठीक बता रहा हूँ ॥ ६ ॥

कोकामुखे तु वाराहं मन्दरे मधुसूदनम् ।
अनन्तं कपिलद्वीपे प्रभासे रविनन्दनम् ॥ ७ ॥
माल्योदपाने वैकुण्ठं महेन्द्रे तु नृपात्मजम् ।
ऋषभे तु महाविष्णुं द्वारकायां तु भूपतिम् ॥ ८ ॥
पाण्डुसह्ये तु देवेशं वसुरूढे जगत्पतिम् ।
वल्लीवटे महायोगं चित्रकूटे नराधिपम् ॥ ९ ॥
निमिषे पीतवासं च गवां निष्क्रमणे हरिम् ।
शालग्रामे तपोवासमचिन्त्यं गन्धमादने ॥ १० ॥
कुब्जागारे हृषीकेशं गन्धद्वारे पयोधरम् ।
गरुडध्वजं तु सकले गोविन्दं नाम सायके ॥ ११ ॥
वृन्दावने तु गोपालं मथुरायां स्वयम्भुवम् ।
केदारे माधवं विन्द्याद्वाराणस्यां तु केशवम् ॥ १२ ॥
पुष्करे पुष्कराक्षं तु धृष्टद्युम्ने जयध्वजम् ।
तृणबिन्दुवने वीरमशोकं सिन्धुसागरे ॥ १३ ॥
कसेरटे महाबाहुममृतं तैजसे वने ।
विश्वासयूपे विश्वेशं नरसिंहं महावने ॥ १४ ॥
हलाङ्गरे रिपुहरं देवशालां त्रिविक्रमम् ।
पुरुषोत्तमं दशपुरे कुब्जके वामनं विदुः ॥ १५ ॥
विद्याधरं वितस्तायां वाराहे धरणीधरम् ।
देवदारुवने गुह्यं कावेर्यां नागशायिनम् ॥ १६ ॥
प्रयागे योगमूर्तिं च पयोष्ण्यां च सुदर्शनम् ।
कुमारतीर्थे कौमारं लोहिते हयशीर्षकम् ॥ १७ ॥
उज्जयिन्यां त्रिविक्रमं लिङ्गकूटे चतुर्भुजम् ।
हरिहरं तु भद्रायां दृष्ट्वा पापात्प्रमुच्यते ॥ १८ ॥

कोकामुख-क्षेत्रमें मेरे वाराहस्वरूपका, मन्दराचलपर मधुसूदनका, कपिलद्वीपमें अनन्तका, प्रभासक्षेत्रमें सूर्यनन्दनका, माल्योदपानतीर्थमें भगवान् वैकुण्ठका, महेन्द्रपर्वतपर

राजकुमारका, ऋषभतीर्थमें महाविष्णुका, द्वारकामें भूपाल श्रीकृष्णका, पाण्डुसह्य पर्वतपर देवेशका, वसुरूढ तीर्थमें जगत्पतिका, वल्लीवटमें महायोगका, चित्रकूटमें राजा रामका, नैमिषारण्यमें पीताम्बरका, गौओंके विचरनेके स्थान व्रजमें हरिका, शालग्राम तीर्थमें तपोवासका, गन्धमादन पर्वतपर अचिन्त्य परमेश्वरका, कुब्जागारमें हृषीकेशका, गन्धद्वारमें पयोधरका, सकलतीर्थमें गरुडध्वजका, सायकमें गोविन्दका, वृन्दावनमें गोपालका, मथुरामें स्वयम्भू भगवान्का, केदारतीर्थमें माधवका, वाराणसी (काशी) में केशवका, पुष्कर तीर्थमें पुष्कराक्षका, धृष्टद्युम्न-क्षेत्रमें जयध्वजका, तृणबिन्दु वनमें वीरका, सिन्धुसागरमें अशोकका, कसेरटमें महाबाहुका, तैजस वनमें भगवान् अमृतका, विश्वासयूप (या विशाखयूप) क्षेत्रमें विश्वेशका, महावनमें नरसिंहका, हलाङ्गरमें रिपुहरका, देवशालामें भगवान् त्रिविक्रमका, दशपुरमें पुरुषोत्तमका, कुब्जक तीर्थमें वामनका, वितस्तामें विद्याधरका, वाराह तीर्थमें धरणीधरका, देवदारुवनमें गुह्यका, कावेरीतटपर नागशायीका, प्रयागमें योगमूर्तिका, पयोष्णीतटपर सुदर्शनका, कुमारतीर्थमें कौमारका, लोहितमें हयग्रीवका, उज्जयिनीमें त्रिविक्रमका, लिङ्गकूटपर चतुर्भुजका और भद्राके तटपर भगवान् हरिहरका दर्शन करके मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है ॥ ७–१८ ॥

विश्वरूपं कुरुक्षेत्रे मणिकुण्डे हलायुधम् ।
लोकनाथमयोध्यायां कुण्डिने कुण्डिनेश्वरम् ॥१९॥
भाण्डारे वासुदेवं तु चक्रतीर्थे सुदर्शनम् ।
आढ्ये विष्णुपदं विद्याच्छूकरे शूकरं विदुः ॥२०॥
ब्रह्मेशं मानसे तीर्थे दण्डके श्यामलं विदुः ।
त्रिकूटे नागमोक्षं च मेरुपृष्ठे च भास्करम् ॥२१॥
विरजं पुष्पभद्रायां बालं केरलके विदुः ।
यशस्करं विपाशायां माहिष्मत्यां हुताशनम् ॥२२॥
क्षीराब्धौ पद्मनाभं तु विमले तु सनातनम् ।
शिवनद्यां शिवकरं गयायां च गदाधरम् ॥२३॥
सर्वत्र परमात्मानं यः पश्यति स मुच्यते ।

इसी प्रकार कुरुक्षेत्रमें विश्वरूपका, मणिकुण्डमें हलायुधका, अयोध्यामें लोकनाथका, कुण्डिनपुरमें कुण्डिनेश्वरका, भाण्डारमें वासुदेवका, चक्रतीर्थमें सुदर्शनका, आढ्यतीर्थमें विष्णुपदका, शूकर-क्षेत्रमें भगवान् शूकरका, मानसतीर्थमें ब्रह्मेशका, दण्डकतीर्थमें श्यामलका, त्रिकूटपर्वतपर नागमोक्षका, मेरुके शिखरपर भास्करका, पुष्पभद्राके तटपर विरजका, केरल-तीर्थमें बालरूप भगवान्का, विपाशाके तटपर भगवान् यशस्करका, माहिष्मतीपुरीमें हुताशनका, क्षीरसागरमें भगवान् पद्मनाभका, विमलतीर्थमें सनातनका, शिवनदीके तटपर भगवान् शिवका, गयामें गदाधरका और सर्वत्र ही परमात्माका जो दर्शन करता है, वह मुक्त हो जाता है ॥ १९–२३½ ॥

अष्टषष्टिश्च नामानि कथितानि मया तव ॥२४॥
क्षेत्राणि चैव गुह्यानि कथितानि विशेषतः ।
एतानि मम नामानि रहस्यानि प्रजापते ॥२५॥
यः पठेत् प्रातरुत्थाय शृणुयाद्वापि नित्यशः ।
गवां शतसहस्रस्य दत्तस्य फलमाप्नुयात् ॥२६॥
दिने दिने शुचिर्भूत्वा नामान्येतानि यः पठेत् ।
दुःस्वप्नं न भवेत्तस्य मत्प्रसादान्न संशयः ॥२७॥
अष्टषष्टिस्तु नामानि त्रिकालं यः पठेन्नरः ।
विमुक्तः सर्वपापेभ्यो मम लोके स मोदते ॥२८॥
द्रष्टव्यानि यथाशक्त्या क्षेत्राण्येतानि मानवैः ।
वैष्णवैस्तु विशेषेण तेषां मुक्तिं ददाम्यहम् ॥२९॥

ब्रह्माजी ! ये अड़सठ नाम हमने तुम्हें बताये तथा विशेषतः गुप्त तीर्थोंका भी वर्णन किया । प्रजापते ! जो पुरुष प्रतिदिन प्रातःकाल उठकर मेरे इन गुह्यनामोंका पाठ या श्रवण करेगा, वह नित्य एक लाख गोदानका फल पायेगा ! नित्यप्रति पवित्र होकर जो इन नामोंका पाठ करता है, उसको मेरी कृपासे कभी दुःस्वप्नका दर्शन नहीं होता, इसमें संदेह नहीं है । जो पुरुष इन अड़सठ नामोंका प्रतिदिन तीनों काल, अर्थात् प्रातः, मध्याह्न और सायंकालमें पाठ करता है, वह सब पापोंसे मुक्त होकर मेरे लोकमें आनन्द भोगता है । सभी मनुष्यों और विशेषतः वैष्णवोंको चाहिये कि यथाशक्ति पूर्वोक्त तीर्थोंका दर्शन करें । जो लोग ऐसा करते हैं, उन्हें मैं मुक्ति देता हूँ ॥ २४–२९ ॥

सूत उवाच

हरिं समभ्यर्च्य तदग्रसंस्थितो
हरिं स्मरन् विष्णुदिने विशेषतः ।

इमं स्तवं यः पठते स मानवः
प्राप्नोति विष्णोरमृतात्मकं पदम् ॥३०॥

इति श्रीनरसिंहपुराणे आद्ये धर्मार्थमोक्षदायिनि विष्णुवल्लभे पञ्चषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६५ ॥

सूतजी कहते हैं—जो पुरुष सदा और विशेषतः हरिवासर (एकादशी या द्वादशीको) भगवान् विष्णुकी पूजा करके उनके सामने खड़ा हो भगवत्स्मरणपूर्वक इस स्तोत्रका पाठ करता है, वह विष्णुके अमृतपदको प्राप्त कर लेता है ॥ ३० ॥

इस प्रकार श्रीनरसिंहपुराणमें 'आदि' धर्मार्थमोक्षदायक विष्णुवल्लभस्तोत्र' विषयक पैंसठवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ६५ ॥

छाछठवाँ अध्याय

अन्यान्य तीर्थों तथा सह्य और आमलक ग्रामके तीर्थोंका माहात्म्य

सूत उवाच

उक्तः पुण्यः स्तवो ब्रह्मन् हरेरेभिश्च नामभिः ।
पुनरन्यानि नामानि यानि तानि निबोध मे ॥ १ ॥

सूतजी कहते हैं—भगवान् विष्णु पुनः बोले—ब्रह्मन्! उपर्युक्त अड़सठ नामोंसे भगवान् विष्णुकी पावन स्तुतिका वर्णन किया गया। अब जो दूसरे-दूसरे पावन तीर्थ और नाम हैं, उनका वर्णन मुझसे सुनिये ॥ १ ॥

गङ्गा तु प्रथमं पुण्या यमुना गोमती पुनः ।
सरयूः सरस्वती च चन्द्रभागा चर्मण्वती ॥ २ ॥
कुरुक्षेत्रं गया चैव पुष्कराणि तथार्बुदम् ।
नर्मदा च महापुण्या तीर्थान्येतानि चोत्तरे ॥ ३ ॥
तापी पयोष्णी पुण्ये द्वे तत्सङ्गात्तीर्थमुत्तमम् ।
तथा ब्रह्मगिरेश्चापि मेखलाभिः समन्विताः ॥ ४ ॥
विरजं च तथा तीर्थं सर्वपापक्षयंकरम् ।
गोदावरी महापुण्या सर्वत्र चतुरानन ॥ ५ ॥
तुङ्गभद्रा महापुण्या यत्राहं कमलोद्भव ।
हरेण सार्धं प्रीत्या तु वसामि मुनिपूजितः ॥ ६ ॥
दक्षिणगङ्गा कृष्णा तु कावेरी च विशेषतः ।
सह्ये त्वामलकग्रामे स्थितोऽहं कमलोद्भव ॥ ७ ॥
देवदेवस्य नाम्ना तु त्वया ब्रह्मन् सदार्चितः ।
तत्र तीर्थान्यनेकानि सर्वपापहराणि वै ॥
येषु स्नात्वा च पीत्वा च पापान्मुच्यति मानवः ॥८॥

सर्वप्रथम गङ्गा पवित्र हैं; फिर यमुना, गोमती, सरयू, सरस्वती, चन्द्रभागा और चर्मण्वती—ये नदियाँ पावन हैं। इसी प्रकार कुरुक्षेत्र, गया, तीनों पुष्कर और अर्बुद-क्षेत्र तथा परम पावन नर्मदा नदी—ये उत्तरमें परम पावन तीर्थ हैं। तापी, पयोष्णी—ये दो पावन नदियाँ हैं। इनके संगममें एक बहुत उत्तम तीर्थ हो गया है तथा ब्रह्मगिरिकी मेखलाओंमें मिले हुए भी बहुत-से उत्तम तीर्थ हैं। विरज-तीर्थ भी समस्त पापोंको क्षीण करनेवाला है तथा चतुरानन! गोदावरी नदी सर्वत्र परमपावन हैं। कमलोद्भव! तुङ्गभद्रा नदी भी अत्यन्त पवित्र करनेवाली है, जिसके तटपर मैं मुनियोंद्वारा पूजित हो भगवान् शंकरके साथ स्वयं निवास करता हूँ। दक्षिण गङ्गा, कृष्णा और विशेषतः कावेरी—ये पुण्य नदियाँ हैं। इनके अतिरिक्त, कमलोद्भव! मैं सह्यपर्वतपर आमलक ग्राममें स्वयं निवास करता हूँ। वहाँ 'देवदेव' नामसे प्रसिद्ध मेरे श्रीविग्रहका तुम स्वयं ही सदा पूजन करते हो। वहाँ समस्त पापोंको हर लेनेवाले अनेक तीर्थ हैं, जिनमें स्नान और आचमन करके मनुष्य पापसे मुक्त हो जाता है ॥२–८॥

सूत उवाच

इत्येवं कथयित्वा तु तीर्थानि मधुसूदनः ।
ब्रह्मणे गतवान् ब्रह्मन् ब्रह्मापि स्वपुरं गतः ॥ ९ ॥

सूतजी कहते हैं—भरद्वाज! ब्रह्माजीसे इन तीर्थोंका वर्णन करके भगवान् मधुसूदन अपने धामको चले गये और ब्रह्मा भी ब्रह्मलोक सिधारे ॥ ९ ॥

भरद्वाज उवाच

तस्मिन्नामलकग्रामे पुण्यतीर्थानि यानि वै ।
तानि मे वद धर्मज्ञ विस्तरेण यथार्थतः ॥१०॥
क्षेत्रोत्पत्तिं च माहात्म्यं यात्रापर्व च यत्र तत् ।
तत्रासौ देवदेवेशः पूज्यते ब्रह्मणा स्वयम् ॥११॥

भरद्वाजजी बोले—धर्मज्ञ ! उस आमलक ग्राममें जो-जो पुण्यतीर्थ हैं, उनका आप विस्तारके साथ यथार्थरूपमें वर्णन करें । जहाँ देवदेवेश्वर भगवान् विष्णु स्वयं ब्रह्माजीके द्वारा पूजित होते हैं, उस क्षेत्रकी उत्पत्ति-कथा, माहात्म्य और यात्रापर्वका विस्तृत विवरण प्रस्तुत कीजिये ॥ १०-११ ॥

सूत उवाच

शृणु विप्र प्रवक्ष्यामि पुण्यं पापप्रणाशनम् ।
सह्यामलकतीर्थस्य उत्पत्त्यादि महामुने ॥१२॥

सूतजी कहते हैं—विप्र ! महामुने ! सह्यपर्वतपर स्थित 'आमलक'तीर्थके आविर्भाव आदिकी पवित्र एवं पापनाशक कथा मैं आपसे कह रहा हूँ, सुनें ॥ १२ ॥

पुरा सह्यवनोद्देशे तरुरामलको महान् ।
आसीद्ब्रह्मन् महोग्रोऽयं नाम्नायं चोच्यते बुधैः॥१३॥
फलानि तस्य वृक्षस्य महान्ति सुरसानि च ।
दर्शनीयानि दिव्यानि दुर्लभानि महामुने ॥१४॥
परेषां ब्राह्मणानां तु परेण ब्रह्मणा पुरा ।
स दृष्टस्तु महावृक्षो महाफलसमन्वितः ॥१५॥
किमेतदिति विप्रेन्द्र ध्यानदृष्टिपरोऽभवत् ।
ध्यानेन दृष्टवांस्तत्र पुनरामलकं तरुम् ॥१६॥
तस्योपरि तु देवेशं शङ्खचक्रगदाधरम् ।
उत्थाय च पुनः पश्येत्प्रतिमामेव केवलाम् ॥१७॥
तत्पादं भूतले देवः प्रविवेश महातरुः ।
ततस्त्वाराधयामास देवदेवेशमव्ययम् ॥१८॥
गन्धपुष्पादिभिर्नित्यं ब्रह्मा लोकपितामहः ।
द्वादशभिः सप्तभिस्तु संख्याभिः पूजितो हरिः ॥१९॥

ब्रह्मन् ! पूर्वकालमें सह्य पर्वतके वनमें एक बहुत बड़ा आँवलेका वृक्ष था । उसे बुद्धिमान् लोगोंने 'महोग्र' नाम दे रक्खा था । महामुने ! उस वृक्षके फल बड़े रसीले, दर्शनीय, दिव्य एवं दुर्लभ होते थे । समस्त उत्तम ब्राह्मणोंमें उत्कृष्ट श्रीब्रह्माजीने पूर्वकालमें महान् फलोंसे युक्त उस महावृक्षको देखा था । विप्रेन्द्र ! उसे देखकर, यह क्या है—यह जाननेके लिये ब्रह्माजी ध्यानमग्न हो गये । उन्होंने ध्यानमें उस स्थानपर महान् आँवलेके वृक्षको देखा और उसके ऊपर शङ्ख, चक्र एवं गदा धारण करनेवाले देवेश्वर भगवान् विष्णुको विराजमान देखा । फिर उन्होंने जब ध्यानसे निवृत्त हो खड़े होकर दृष्टिपात किया, तब वहाँ वृक्षके स्थानमें केवल भगवान् विष्णुकी एक प्रतिमा दिखायी दी । उसका आधारभूत वह दिव्य महावृक्ष भूतलमें धँस गया ! तब लोकपितामह भगवान् ब्रह्माजी गन्ध-पुष्प आदिसे नित्य ही उन अविनाशी देवदेवेश्वरकी आराधना करने लगे । उस समय उनके द्वारा बारह और सात बार भगवान्‌की पूजा सम्पन्न हुई ॥१३—१९॥

तस्मिन् क्षेत्रे मुनिश्रेष्ठ माहात्म्यं तस्य को वदेत् ।
श्रीसह्यामलकग्रामे देवदेवेशमव्ययम् ॥२०॥
आराध्य तीर्थे सम्प्राप्ता द्वादश प्रति चतुर्मुखम् ।
तस्य पादतले तीर्थं निस्सृतं पश्चिमामुखम् ॥२१॥
तच्चक्रतीर्थमभवत्पुण्यं पापप्रणाशनम् ।
चक्रतीर्थे नरः स्नात्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥२२॥
बहुवर्षसहस्राणि ब्रह्मलोके महीयते ।
शङ्खतीर्थे नरः स्नात्वा वाजपेयफलं लभेत् ॥२३॥
पौषे मासे तु पुष्यार्के तद्रात्रादिवसं मुने ।
ब्रह्मणः कुण्डिका पूर्वं गङ्गातोयप्रपूरिता ॥२४॥
तस्याद्रौ पतिता ब्रह्मंस्तत्र तीर्थेऽशुभं हरेत् ।
नाम्ना तत्कुण्डिकातीर्थं शिलागृहसमन्वितम् ॥२५॥
तत्तीर्थे मनुजः स्नात्वा तदानीं सिद्धिमाप्नुयात् ।
त्रिरात्रोपोषितो भूत्वा यस्तत्र स्नाति मानवः ॥२६॥
सर्वपापविनिर्मुक्तो ब्रह्मलोके महीयते ।
कुण्डिकातीर्थादुत्तरे पिण्डस्थानाच्च दक्षिणे ॥२७॥
ऋणमोचनतीर्थं हि तीर्थानां गुह्यमुत्तमम् ।
त्रिरात्रमुषितो यस्तु तत्र स्नानं समाचरेत् ॥२८॥
ऋणैस्त्रिभिरसौ ब्रह्मन् मुच्यते नात्र संशयः ।
श्राद्धं कृत्वा पितृभ्यश्च पिण्डस्थानेषु यो नरः ॥२९॥
पितृनुद्दिश्य विधिवत्पिण्डान्निर्वापयिष्यति ।
सुतृप्ताः पितरो यान्ति पितृलोकं न संशयः ॥३०॥

मुनिश्रेष्ठ ! उस आमलकक्षेत्रमें विराजमान भगवान्‌के माहात्म्यका कौन वर्णन कर सकता है। श्रीसह्यपर्वतस्थ आमलक ग्राममें इस प्रकार अविनाशी देवेश्वर भगवान्‌की आराधना करनेके पश्चात् ब्रह्माजीको वहाँ बारह तीर्थ और प्राप्त हुए ।

भगवान्‌के चरणके नीचे पश्चिमाभिमुख एक तीर्थ प्रकट हुआ। वह 'चक्रतीर्थ'के नामसे विख्यात हुआ। वह पावन तीर्थ पापोंको नष्ट करनेवाला है। मनुष्य चक्रतीर्थमें स्नान करके सब पापोंसे मुक्त हो जाता है और हजारों वर्षोंतक ब्रह्मलोकमें पूजित होता है। इसके बाद 'शङ्खतीर्थ' है। उसमें स्नान करनेसे मनुष्यको वाजपेय यज्ञका फल मिलता है। मुने! पौष मासमें जब सूर्य पुष्य नक्षत्रपर स्थित हों, उसी समय वहाँकी यात्राका पर्व है। पूर्वकालमें एक समय सह्यपर्वतपर गङ्गाजलसे भरा हुआ ब्रह्माजीका कमण्डलु गिर पड़ा था, तबसे वह स्थान 'कुण्डिका' तीर्थके नामसे विख्यात हुआ। वह तीर्थ सारे अशुभोंको हर लेता है। वहाँ एक शिलामय गृह भी है। उस तीर्थमें स्नान करके मनुष्य तत्काल सिद्धि प्राप्त कर लेता है। जो मनुष्य उस तीर्थमें तीन राततक उपवास करके स्नान करता है, वह सब पापोंसे सर्वथा मुक्त हो ब्रह्मलोकमें पूजित होता है। कुण्डिका-तीर्थसे उत्तर और 'पिण्डस्थान' नामक तीर्थसे दक्षिण 'ऋणमोचन' नामक तीर्थ है, जो सब तीर्थोंमें उत्तम और गुह्य है। ब्रह्मन्! वहाँ तीन राततक निवास करके जो स्नान करता है, वह निस्संदेह तीनों ऋणोंसे मुक्त हो जाता है। जो मनुष्य पिण्डस्थानमें श्राद्ध करके वहाँ पितरोंके उद्देश्यसे विधिपूर्वक पिण्डदान करेगा, उसके पितर पूर्ण तृप्त होकर अवश्य ही पितृलोकको प्राप्त होंगे॥ २०—३०॥

पञ्चरात्रोपितस्नायी तीर्थे वै पापमोचने।
सर्वपापक्षयं प्राप्य विष्णुलोके स मोदते॥३१॥
तत्रैव महतीं धारां शिरसा यस्तु धारयेत्।
सर्वक्रतुफलं प्राप्य नाकपृष्ठे महीयते॥३२॥

इसके बाद 'पाप-मोचन' तीर्थ है। उस तीर्थमें पाँच राततक निवास करते हुए जो नित्य स्नान करता है, वह अपने सम्पूर्ण पापोंको नष्ट करके विष्णुलोकमें आनन्दका भागी होता है। वहीं एक बहुत बड़ी धारा बहती है। उसके जलको जो अपने सिरपर धारण करता है, वह समस्त यज्ञोंके फलको प्राप्त करके स्वर्गलोकमें प्रतिष्ठित होता है॥ ३१-३२॥

धनुःपाते महातीर्थे भक्त्या यः स्नानमाचरेत्।
आयुर्भोगफलं प्राप्य स्वर्गलोके महीयते॥३३॥
शरबिन्दौ नरः स्नात्वा शतक्रतुपुरं व्रजेत्।
वाराहतीर्थे विप्रेन्द्र सह्ये यः स्नानमाचरेत्॥३४॥
अहोरात्रोषितो भूत्वा विष्णुलोके महीयते।
आकाशगङ्गानाम्ना च सह्याग्रे तीर्थमुत्तमम्॥३५॥
शिलातलात्ततो ब्रह्मन्निर्गता श्वेतमृत्तिका।
तस्यां भक्त्या तु यः स्नाति नरो द्विजवरोत्तम॥३६॥
सर्वक्रतुफलं प्राप्य विष्णुलोके महीयते।

इसके बाद 'धनुःपात' नामक एक महान् तीर्थ है। उसमें जो भक्तिपूर्वक स्नान करता है, वह पूर्ण आयुका भोग करके अन्तमें स्वर्गलोकमें सम्मानित होता है। 'शरबिन्दु' तीर्थमें स्नान करनेसे मनुष्य मृत्युके बाद इन्द्रपुरीमें जाता है तथा जो सह्यपर्वतपर 'वाराहतीर्थ'में स्नान करता और वहाँ एक दिन-रात निवास करता है, वह विष्णुलोकमें पूजित होता है। इसके बाद सह्यके शिखरपर 'आकाशगङ्गा' नामक एक उत्तम तीर्थ है। वहाँकी शिलाओंके नीचेसे सफेद मिट्टी निकलती है। विप्रवर! उसमें जो भक्तिपूर्वक स्नान करता है, वह सम्पूर्ण यज्ञोंका फल प्राप्तकर विष्णुलोकमें पूजित होता है॥ ३३—३६½॥

ब्रह्मन्नमलसह्याद्रेर्यद्यत्तोयविनिर्गमः॥३७॥
तत्र तीर्थं विजानीहि स्नात्वा पापात्प्रमुच्यते।
सह्याद्रिं गतवान्नित्यं स्नात्वा पापात्प्रमुच्यते॥३८॥
एतेषु तीर्थेषु नरो द्विजेन्द्र
पुण्येषु सह्याद्रिसमुद्भवेषु।
दत्त्वा सुपुष्पाणि हरिं स भक्त्या
विहाय पापं प्रविशेत्स विष्णुम्॥३९॥
सकृत्तीर्थाद्रितोयेषु गङ्गायां तु पुनः पुनः।
सर्वतीर्थमयी गङ्गा सर्वदेवमयो हरिः॥४०॥
सर्वशास्त्रमयी गीता सर्वधर्मो दयापरः।

ब्रह्मन्! उस निर्मल सह्यगिरिसे जहाँ-जहाँ जलके झरने गिरते हैं, वहाँ-वहाँ सब जगह तीर्थ समझना चाहिये। उसमें स्नान करके मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। जो नित्य ही सह्यपर्वतकी यात्रा करके वहाँ स्नान करता है, वह निष्पाप हो जाता है। द्विजेन्द्र! जो मनुष्य सह्यपर्वतके

इन पावन तीर्थोंमें स्नान करके भक्तिपूर्वक भगवान् विष्णुको पुष्प चढ़ाता है, वह पापोंसे रहित हो भगवान् विष्णुमें ही लीन हो जाता है। अन्य सभी तीर्थोंके पर्वतोंसे बहनेवाले जलमें यथासम्भव एक बार स्नान कर लेना चाहिये, परंतु गङ्गामें बार-बार स्नान करे; क्योंकि गङ्गामें सम्पूर्ण तीर्थ हैं, भगवान् विष्णुमें सभी देवता वर्तमान हैं, गीता सर्वशास्त्रमयी है और सभी धर्मोंमें जीवदया श्रेष्ठ है ॥ ३७—४०½ ॥

एवं ते कथितं विप्र क्षेत्रमाहात्म्यमुत्तमम् ॥४१॥
श्रीसह्यामलकग्रामे तीर्थे स्नात्वा फलानि च।
तीर्थानामपि यत्तीर्थं तत्तीर्थं द्विजसत्तम।
देवदेवस्य पादस्य तलाद्भुवि विनिस्सृतम् ॥४२॥
अम्भोयुगं तुरगमेधसहस्रतुल्यं
तच्चक्रतीर्थमिति वेदविदो वदन्ति।
स्नानाच्च तत्र मनुजा न पुनर्भवन्ति
पादौ प्रणम्य शिरसा मधुसूदनस्य॥४३॥
गङ्गाप्रयागगमनैमिपपुष्कराणि
पुण्यायुतानि कुरुजाङ्गलयामुनानि।
कालेन तीर्थसलिलानि पुनन्ति पापात्
पादोदकं भगवतस्तु पुनाति सद्यः ॥४४॥

इति श्रीनरसिंहपुराणे तीर्थप्रशंसायां षट्षष्टितमो-ऽध्यायः ॥ ६६ ॥

विप्र! इस प्रकार मैंने आपसे इस क्षेत्रके उत्तम माहात्म्यका वर्णन किया। साथ ही, सह्य और आमलक ग्रामके तीर्थोंमें स्नान करनेके फल भी बताये। द्विजश्रेष्ठ! वही उत्तम तीर्थ है, जो तीर्थोंका भी तीर्थ हो। यह आमलकग्राम तीर्थ देवदेव भगवान् विष्णुके चरण-तलसे प्रकट हुआ है, अतः यह सर्वोत्तम तीर्थ है। यहाँपर जो जल है, उसमें स्नान करना हजार अश्वमेध यज्ञ करनेके बराबर है। उसीको वेदवेत्ता पुरुष 'चक्रतीर्थ' कहते हैं। वहाँ स्नान करके भगवान् मधुसूदनके चरणोंमें मस्तक झुकानेसे मनुष्यका इस संसारमें पुनर्जन्म नहीं होता। गङ्गा, प्रयाग, नैमिषारण्य, पुष्कर, कुरुजाङ्गल प्रदेश और यमुना-तटवर्ती तीर्थ—ये सभी पुण्यतीर्थ हैं। इन तीर्थोंके जलमें स्नान करनेपर वे कुछ समयके बाद पवित्र करते हैं; किंतु भगवान् विष्णुका चरणोदकरूप यह 'चक्रतीर्थ' तत्काल पवित्र कर देता है ॥ ४१—४४ ॥

इस प्रकार श्रीनरसिंहपुराणमें तीर्थप्रशंसाविषयक छाछठवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ६६ ॥

सड़सठवाँ अध्याय

मानस-तीर्थ, व्रत तथा इस पुराणका माहात्म्य

सूत उवाच

तीर्थानि कथितान्येवं भौमानि द्विजसत्तम।
मानसानि हि तीर्थानि फलदानि विशेषतः ॥ १ ॥
मनोनिर्मलता तीर्थं रागादिभिरनाकुला।
सत्यं तीर्थं दया तीर्थं तीर्थमिन्द्रियनिग्रहः ॥ २ ॥
गुरुशुश्रूषणं तीर्थं मातृशुश्रूषणं तथा।
स्वधर्माचरणं तीर्थं तीर्थमग्नेरुपासनम् ॥ ३ ॥
एतानि पुण्यतीर्थानि व्रतानि शृणु मेऽधुना।

सूतजी कहते हैं—द्विजश्रेष्ठ! इस प्रकार अबतक मैंने भूतलके प्रसिद्ध तीर्थोंका वर्णन किया; किंतु इन तीर्थोंकी अपेक्षा मानसतीर्थ विशेष फल देनेवाले हैं। वास्तवमें राग-द्वेषादिसे रहित मनकी स्वच्छता ही उत्तम तीर्थ है। सत्य, दया, इन्द्रियनिग्रह, गुरुसेवा, माता-पिताकी सेवा, स्वधर्मपालन और अग्निकी उपासना—ये परम उत्तम तीर्थ हैं। यह तो पावन तीर्थोंका वर्णन हुआ, अब व्रतोंका वर्णन सुनिये ॥ १—३½ ॥

एकभुक्तं तथा नक्तमुपवासं च वै मुने ॥ ४ ॥

पूर्णमास्याममावास्यामेकभुक्तं समाचरेत् ।
तत्रैकभुक्तं कुर्वाणः पुण्यां गतिमवाप्नुयात् ॥ ५ ॥
चतुर्थ्यां तु चतुर्दश्यां सप्तम्यां नक्तमाचरेत् ।
अष्टम्यां तु त्रयोदश्यां स प्राप्नोत्यभिवाञ्छितम् ॥ ६ ॥

मुने ! दिन-रातमें एक बार भोजन करके रहना और विशेषतः रातमें भोजन न करना—यह व्रत है । पूर्णिमा और अमावास्याको एक ही बार भोजन करके रहना चाहिये । इन तिथियोंमें एक बार भोजन करके रहनेवाला मनुष्य पावन गतिको प्राप्त करता है । जो चतुर्थी, चतुर्दशी, सप्तमी, अष्टमी और त्रयोदशीको रातमें उपवास करता है, उसे मनोवाञ्छित वस्तुकी प्राप्ति होती है ॥ ४–६ ॥

उपवासो मुनिश्रेष्ठ एकादश्यां विधीयते ।
नरसिंहं समभ्यर्च्य सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ७ ॥
हस्तयुक्तेऽर्कदिवसे सौरनक्तं समाचरेत् ।
स्नात्वार्कमध्ये विष्णुं च ध्यात्वा रोगात्प्रमुच्यते ॥८॥
आत्मनो द्विगुणां छायां यदा संतिष्ठते रविः ।
सौरनक्तं विजानीयान्न नक्तं निशि भोजनम् ॥ ९ ॥

मुनिश्रेष्ठ ! एकादशीको दिन-रात उपवास करनेका विधान है । उस दिन भगवान् विष्णुका पूजन करके मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है । यदि हस्त नक्षत्रसे युक्त रविवार हो तो उस दिन रात्रिमें उपवास करके सौरनक्त-व्रतका पालन करना चाहिये । उस दिन स्नानके पश्चात् सूर्यमण्डलमें भगवान् विष्णुका ध्यान करके मनुष्य रोगमुक्त हो जाता है । जब सूर्य अपनी दुगुनी छायामें स्थित हों, उस दिन सौर नक्तव्रतका समय है । उस समयसे लेकर राततक भोजन न करे ॥ ७–९ ॥

गुरुवारे त्रयोदश्यामपराह्णे जले ततः ।
तर्पयित्वा पितॄन्देवानृषींश्च तिलतन्दुलैः ॥१०॥
नरसिंहं समभ्यर्च्य यः करोत्युपवासकम् ।
सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोके महीयते ॥११॥

जो पुरुष बृहस्पतिवारको त्रयोदशी तिथि होनेपर अपराह्णकालमें जलमें स्नान करके तिल और तण्डुलोंद्वारा देवता, ऋषि एवं पितरोंका तर्पण करता है तथा भगवान् नरसिंहका पूजन करके उपवास करता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो विष्णुलोकमें प्रतिष्ठित होता है ॥ १०–११ ॥

यदागस्त्योदये प्राप्ते तदा सप्तसु रात्रिषु ।
अर्घ्यं दद्यात् समभ्यर्च्य अगस्त्याय महामुने ॥१२॥
शङ्खे तोयं विनिक्षिप्य सितपुष्पाक्षतैर्युतम् ।
मन्त्रेणानेन वै दद्याच्छितपुष्पादिनार्चिते ॥१३॥
काशपुष्पप्रतीकाश अग्निमारुतसम्भव ।
मित्रावरुणयोः पुत्र कुम्भयोने नमोऽस्तु ते ॥१४॥
आतापी भक्षितो येन वातापी च महासुरः ।
समुद्रः शोषितो येन सोऽगस्त्यः प्रीयतां मम ॥१५॥
एवं तु दद्याद्यो सर्वमगस्त्ये वै दिशं प्रति ।
सर्वपापविनिर्मुक्तस्तमस्तरति दुस्तरम् ॥१६॥

महामुने ! जब अगस्त्य तारेका उदय हो, उस समयसे लगातार सात रात्रियोंतक अगस्त्यमुनिकी पूजा करके उन्हें अर्घ्य देना चाहिये । शङ्खमें श्वेत पुष्प और अक्षतसहित जल रखकर श्वेत पुष्प आदिसे पूजित हुए अगस्त्यजीके प्रति निम्नाङ्कित मन्त्र-वाक्य पढ़कर अर्घ्य निवेदन करे—'अग्नि और वायु देवतासे प्रकट हुए अगस्त्यजी ! काश पुष्पके समान उज्ज्वल वर्णवाले कुम्भज मुने ! मित्र और वरुणके पुत्र भगवान् कुम्भयोने ! आपको नमस्कार है । जिन्होंने महान् असुर आतापी और वातापीको भक्षण कर लिया और समुद्रको भी सोख डाला, वे अगस्त्यजी मुझपर प्रसन्न हों ।' इस प्रकार कहकर जो पुरुष अगस्त्यकी दिशा (दक्षिण)के प्रति अर्घ्य अर्पण करता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो, दुस्तर मोहान्धकारसे पार हो जाता है ॥ १२–१६ ॥

एवं ते कथितं सर्वं भरद्वाज महामुने ।
पुराणं नारसिंहं च मुनीनां संनिधौ मया ॥१७॥
सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च ।
वंशानुचरितं चैव सर्वमेव प्रकीर्तितम् ॥१८॥
ब्रह्मणैव पुरा प्रोक्तं मरीच्यादिषु वै मुने ।
तेभ्यश्च भृगुणा प्रोक्तं मार्कण्डेयाय वै ततः ॥१९॥

मार्कण्डेयेन वै प्रोक्तं राज्ञो नागकुलस्य ह।
प्रसादान्नरसिंहस्य प्राप्तं व्यासेन धीमता ॥२०॥
तत्प्रसादान्मया प्राप्तं सर्वपापप्रणाशनम्।
पुराणं नरसिंहस्य मया च कथितं तव ॥२१॥
मुनीनां संनिधौ पुण्यं स्वस्ति तेऽस्तु व्रजाम्यहम्।

महामुने ! भरद्वाजजी ! इस प्रकार मैंने मुनियोंके निकट यह पूरा 'नरसिंहपुराण' आपको सुनाया। इसमें मैंने सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मन्वन्तर और वंशानुचरित—सभीका वर्णन किया है। मुने ! इस पुराणको सर्वप्रथम ब्रह्माजीने मरीचि आदि मुनियोंके प्रति कहा था। उन मुनियोंमेंसे भृगुजीने मार्कण्डेयजीके प्रति इसे कहा और मार्कण्डेयजीने नागकुलोत्पन्न राजा सहस्रानीकको इसका श्रवण कराया। फिर भगवान् नरसिंहकी कृपासे इस पुराणको बुद्धिमान् श्रीव्यासजीने प्राप्त किया। उनकी अनुकम्पासे मैंने इस सर्वपापनाशक पवित्र पुराणका ज्ञान प्राप्त किया और इस समय मैंने यह नरसिंहपुराण इन मुनियोंके निकट आपसे कहा। अब आपका कल्याण हो, मैं जा रहा हूँ॥ १७–२१½ ॥

यः शृणोति शुचिर्भूत्वा पुराणं ह्येतदुत्तमम् ॥२२॥
माघे मासि प्रयागे तु स स्नानफलमाप्नुयात्।
यो भक्त्या श्रावयेद्भक्तान्नित्यं नरहरेरिदम् ॥२३॥
सर्वतीर्थफलं प्राप्य विष्णुलोके महीयते।

जो मनुष्य पवित्र होकर इस उत्तम पुराणका श्रवण करता है, वह माघ मासमें प्रयागतीर्थमें स्नान करनेका फल प्राप्त करता है। जो मनुष्य इस नरसिंहपुराणको भगवान्के भक्तोंके प्रति नित्य सुनाता है, वह सम्पूर्ण तीर्थोंके सेवनका फल प्राप्त करके विष्णुलोकमें प्रतिष्ठित होता है॥ २२-२३½ ॥

श्रुत्वैवं स्नातकैः सार्धं भरद्वाजो म[illegible] ॥२४॥
सूतमभ्यर्च्य तत्रैव स्थितवान् मुनय[illegible]।

इस प्रकार स्नातकोंके साथ इस पुराणको [illegible] भरद्वाजजीने सूतजीका पूजन-सत्कार किया अ[illegible] स्वयं वहीं रह गये। अन्य सब मुनि अपने-अपने स्थानको चले गये॥ २४½ ॥

सर्वपापहरं पुण्यं पुराणं नृसिंहात्मकम् ॥२५॥
पठतां शृण्वतां नृणां नरसिंहः प्रसीदति।
प्रसन्ने देवदेवेशे सर्वपापक्षयो भवेत् ॥२६॥
प्रक्षीणपापबन्धास्ते मुक्तिं यान्ति नरा इति ॥२७॥

इति श्रीनरसिंहपुराणे मानसतीर्थव्रतं नाम सप्तषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६७ ॥

यह नरसिंहपुराण समस्त पापोंको हर लेनेवाला और पुण्यमय है। जो इसको पढ़ते और सुनते हैं, उन मनुष्योंपर भगवान् नरसिंह प्रसन्न होते हैं। देवदेवेश्वर नरसिंहके प्रसन्न होनेपर सम्पूर्ण पापोंका नाश हो जाता है और जिनके पाप-बन्धन सर्वथा नष्ट हो गये हैं, वे मानव मोक्षको प्राप्त होते हैं॥ २५–२७॥

इस प्रकार श्रीनरसिंहपुराणमें 'मानसतीर्थ-व्रत' नामक सड़सठवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ६७॥

अड़सठवाँ अध्याय

नरसिंहपुराणके पठन और श्रवणका फल

सूत उवाच

इत्येतत् सर्वमाख्यातं पुराणं नारसिंहकम्।
सर्वपापहरं पुण्यं सर्वदुःखनिवारणम् ॥ १ ॥
समस्तपुण्यफलदं सर्वयज्ञफलप्रदम्।
ये पठन्त्यपि शृण्वन्ति श्लोकं श्लोकार्धमेव वा ॥ २ ॥
न तेषां पापबन्धस्तु कदाचिदपि जायते।
विष्ण्वर्पितमिदं पुण्यं पुराणं सर्वकामदम् ॥ ३ ॥
भक्त्या च वदतामेतच्छृण्वतां च फलं शृणु।

शतजन्मार्ज[illegible] निर्मोचिताः ॥ ४ ॥
सहस्र[illegible] परमं पदम् ।
[illegible] तीर्थैर्गोप्रद[illegible]भवो किमध्वरैः ॥ ५ ॥
अहन्यहनि [illegible]परत्वेन शृण्वताम् ।
[illegible]थाय यदस्य श्लोकविंशतिम् ॥ ६ ॥
[illegible] विष्णुलोके महीयते ।

[illegible] कहते हैं—इस प्रकार मैंने यह सम्पूर्ण नरसिंह-पुराण कह सुनाया। यह सब पापोंको हरनेवाला और सम्पूर्ण दुःखोंको दूर करनेवाला है। समस्त पुण्यों तथा सभी यज्ञोंका फल देनेवाला है। जो लोग इसके एक श्लोक या आधे श्लोकका श्रवण अथवा पाठ करते हैं, उन्हें कभी भी पापोंसे बन्धन नहीं प्राप्त होता। भगवान् विष्णुको अर्पण किया हुआ यह पावन पुराण समस्त कामनाओंकी पूर्ति करनेवाला है। भरद्वाजजी! जो लोग भक्तिपूर्वक इस पुराणका पाठ अथवा श्रवण करते हैं, उनको प्राप्त होनेवाले फलका वर्णन सुनिये। वे सौ जन्मोंके पापसे तत्काल ही मुक्त हो जाते हैं तथा अपनी सहस्र पीढ़ियोंके साथ ही परमपदको प्राप्त होते हैं। जो प्रतिदिन एकाग्रचित्तसे गोविन्दगुण-गान सुनते रहते हैं, उनको अनेक बार तीर्थ-सेवन, गोदान, तपस्या और यज्ञानुष्ठान करनेसे क्या लेना है। जो प्रतिदिन सबेरे उठकर इस पुराणके बीस श्लोकोंका पाठ करता है, वह ज्योतिष्टोम यज्ञका फल प्राप्तकर विष्णुलोकमें प्रतिष्ठित होता है ॥ १—६½ ॥

एतत्पवित्रं पूज्यं च न वाच्यमकृतात्मनाम् ॥ ७ ॥
द्विजानां विष्णुभक्तानां श्राव्यमेतन्न स[illegible] ।
एतत्पुराणश्रवणमिहामुत्र सुखप्र[illegible] ॥
वदतां शृण्वतां सद्यः सर्वपापप्रणाश[illegible]
बहुनात्र किमुक्तेन भूयो भूयो मुनीश्व[illegible]
श्रद्धयाश्रद्धया वापि श्रोतव्यमिदमुत्त[illegible]
भारद्वाजमुखाः सर्वे कृतकृत्या द्विजोत्तम[illegible]
सूतं हृष्टाः प्रपूज्याथ सर्वे स्वस्वाश्रमं य[illegible]

इति श्रीनरसिंहपुराणे सूतभरद्वाजादिसंवादे स[illegible]
पहरं श्रीनरसिंहपुराणस्य माहात्म्यं समाप्त[illegible]

शुभम्भवतु

यह पुराण परम पवित्र और आदरणीय है [illegible] अजितेन्द्रिय पुरुषोंको तो कभी नहीं सुनाना चाहिये, विष्णुभक्त द्विजोंको निस्संदेह इसका श्रवण कराना चाहि[illegible] इस पुराणका श्रवण इस लोक और परलोकमें भी सुख देनेव[illegible] है। यह वक्ताओं और श्रोताओंके पापको तत्काल नष्ट [illegible] देता है। मुनीश्वरगण! इस विषयमें बहुत कहनेकी [illegible] आवश्यकता है। श्रद्धासे हो या अश्रद्धासे, इस उत्तम पुराण[illegible] श्रवण करना ही चाहिये। इस पुराणको सुनकर भरद्वाज आदि द्विजश्रेष्ठगण कृतार्थ हो गये। उन्होंने हर्षपूर्वक सूतजीका समादर किया। फिर सब लोग अपने-अपने आश्रमको चले गये ॥ ७—११ ॥

इस प्रकार सूत-भरद्वाजादि-संवादरूप श्रीनरसिंहपुराणमें इसके 'सर्वदुःखहारी माहात्म्यका वर्णन' नामक अड़सठवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ६८ ॥

श्रीहरिः

'कल्याण'के नियम

उद्देश्य—भक्ति, ज्ञान, वैराग्य, धर्म और सदाचारसमन्वित लेखोंद्वारा जनता[illegible]कल्याणके पथपर पहुँचानेका प्रयत्न करना इसका उद्देश्य [illegible]

नियम

([illegible]) [illegible]क्ति, भक्तचरित, ज्ञान, वैराग्यादि ईश्वर-पुर[illegible]में सहायक, अध्यात्मविषयक, व्यक्तिगत [illegible] अतिरिक्त अन्य विषयोंके लेख भेजनेका कोई [illegible]। लेखोंको घटाने-बढ़ाने और छापने अथवा [illegible]कार सम्पादकको है। अमुद्रित लेख बिना माँगे [illegible]ते । **लेखोंमें प्रकाशित मतके लिये [illegible]रदाता नहीं हैं।**

[illegible]का डाकव्यय और विशेषाङ्कसहित अग्रिम [illegible]रतवर्षमें १०.०० रुपये और भारतवर्षसे बाहरके [illegible]द.०० (१८ शिलिंग) नियत हैं । सजिल्द [illegible] भारतमें रु० ११.५० तथा विदेशके लिये २० शिलिंग (१७.८० पैसे) है।

([illegible]) 'कल्याण'का नया वर्ष जनवरीसे आरम्भ [illegible] दिसम्बरमें समाप्त होता है, अतः ग्राहक जनवरीसे [illegible] जाते हैं। वर्षके किसी भी महीनेमें ग्राहक बनाये [illegible]कते हैं; किंतु जनवरीके अङ्कके बाद निकले हुए [illegible]के सब अङ्क उन्हें लेने होंगे। 'कल्याण'के बीचके [illegible]अङ्कसे ग्राहक नहीं बनाये जाते; छः या तीन महीनेके [illegible] भी ग्राहक नहीं बनाये जाते।

(४) इसमें व्यवसायियोंके विज्ञापन किसी भी [illegible]में प्रकाशित नहीं किये जाते।

(५) कार्यालयसे 'कल्याण' दो-तीन बार जाँच करके प्रत्येक ग्राहकके नामसे भेजा जाता है। यदि किसी मासका अङ्क समयपर न पहुँचे तो अपने डाकघरसे लिखा-पढ़ी करनी चाहिये। वहाँसे जो उत्तर मिले, वह हमें भेज देना चाहिये । डाकघरका जवाब शिकायती पत्रके साथ न आनेसे दूसरी प्रति बिना मूल्य मिलनेमें अड़चन हो सकती है।

(६) पता बदलनेकी सूचना कम-से-कम १५ दिन पहले कार्यालयमें पहुँच जानी चाहिये। **लिखते समय ग्राहक-संख्या, पुराना और नया नाम, पता साफ-साफ लिखना चाहिये।** महीने-दो-महीनेके लिये पता बदलवाना हो तो अपने पोस्टमास्टरको ही लिखकर प्रबन्ध कर लेना चाहिये। पता-बदलीकी सूचना न मिलनेपर अङ्क पुराने पतेसे चले जानेकी अवस्थामें दूसरी प्रति बिना मूल्य न भेजी जा सकेगी।

(७) जनवरीसे बननेवाले ग्राहकोंको रंग-बिरंगे चित्रोंवाला जनवरीका अङ्क (चालू वर्षका विशेषाङ्क) दिया जायगा। विशेषाङ्क ही जनवरीका तथा वर्षका पहला अङ्क होगा। फिर दिसम्बरतक प्रतिमास [illegible] मूल्य रु० १०.०० मात्र है। [illegible] बंद हो जाय तो जितने अङ्क [illegible] चंदा समाप्त समझना चाहि[illegible] मूल्य १०.०० रुपये है।

(८) ६० पैसे एक [illegible] मिलनेपर नमूना भेजा जाता है । ग्राहक बननेपर [illegible] तो ६० पैसे बाद दिये जा सकते हैं।

आवश्यक सूचनाएँ

(९) 'कल्याण'में किसी प्रकारका कमीशन [illegible] 'कल्याण'की किसीको एजेन्सी देनेका नियम नहीं है।

(१०) ग्राहकोंको अपना नाम-पता स्पष्ट लिखनेके साथ-साथ **ग्राहक-संख्या** अवश्य लिखनी चाहिये । पत्रमें आवश्यकताका उल्लेख सर्वप्रथम करना चाहिये।

(११) पत्रके उत्तरके लिये जवाबी कार्ड या टिकट भेजना आवश्यक है। एक बातके लिये दुबारा पत्र देना हो तो उसमें पिछले पत्रकी तिथि तथा विषय भी देना चाहिये।

(१२) **ग्राहकोंको चंदा मनीआर्डरद्वारा भेजना चाहिये।** वी० पी० से अङ्क बहुत देरसे जा पाते हैं।

(१३) **प्रेस-विभाग तथा कल्याण-विभागको अलग-अलग समझकर अलग-अलग पत्रव्यवहार करना और रुपया आदि भेजना चाहिये।** 'कल्याण'के साथ पुस्तकें और चित्र नहीं भेजे जा सकते। प्रेससे १.०० रु०से कमकी वी० पी० प्रायः नहीं भेजी जाती।

(१४) चालू वर्षके विशेषाङ्कके बदले पिछले वर्षोंके विशेषाङ्क नहीं दिये जाते।

(१५) **मनीआर्डरके कूपनपर रुपयोंकी संख्या, रुपये भेजनेका उद्देश्य, ग्राहक-नम्बर (नये ग्राहक हों तो 'नया' लिखें), पूरा पता आदि सब बातें साफ-साफ लिखनी चाहिये।**

(१६) प्रबन्धसम्बन्धी पत्र, ग्राहक होनेकी सूचना, मनीआर्डर आदि व्यवस्थापक **"कल्याण", पो० गीताप्रेस (गोरखपुर)** के नामसे और सम्पादकसे सम्बन्ध रखनेवाले पत्रादि **सम्पादक "कल्याण", पो० गीतावाटिका (गोरखपुर)** के नामसे भेजने चाहिये।

(१७) स्वयं आकर ले जाने या एक साथ एकसे अधिक अङ्क रजिस्ट्रीसे या रेलसे मँगानेवालोंसे चंदा कम नहीं लिया जाता।

(१८) 'कल्याण'के आजीवन ग्राहकका चंदा अजिल्द विशेषाङ्कका रु० १२५.०० तथा सजिल्दका रु० १५०.०० है। ग्राहकके दिवंगत होनेपर यदि 'कल्याण'का प्रकाशन जारी रहा तो सूचना मिलनेपर उसके उत्तराधिकारीको अङ्क जाते रहेंगे।

श्रीविष्णुका मृत्युंजय स्तोत्र

मार्कण्डेय उवाच

नारायणं सहस्राक्षं पद्मनाभं पुरातनम् ।
प्रणतोऽस्मि हृषीकेशं किं मे मृत्युः करिष्यति ॥
गोविन्दं पुण्डरीकाक्षमनन्तमजमव्ययम् ।
केशवं च प्रपन्नोऽस्मि किं मे मृत्युः करिष्यति ॥
वासुदेवं जगद्योनिं भानुवर्णमतीन्द्रियम् ।
दामोदरं प्रपन्नोऽस्मि किं मे मृत्युः करिष्यति ॥
शङ्खचक्रधरं देवं छन्नरूपिणमव्ययम् ।
अधोक्षजं प्रपन्नोऽस्मि किं मे मृत्युः करिष्यति ॥
वराहं वामनं विष्णुं नरसिंहं जनार्दनम् ।
माधवं च प्रपन्नोऽस्मि किं मे मृत्युः करिष्यति ॥
पुरुषं पुष्करं पुण्यं क्षेमबीजं जगत्पतिम् ।
लोकनाथं प्रपन्नोऽस्मि किं मे मृत्युः करिष्यति ॥
भूतात्मानं महात्मानं जगद्योनिमयोनिजम् ।
विश्वरूपं प्रपन्नोऽस्मि किं मे मृत्युः करिष्यति ॥
सहस्रशिरसं देवं व्यक्ताव्यक्तं सनातनम् ।
महायोगं प्रपन्नोऽस्मि किं मे मृत्युः करिष्यति ॥

(नरसिंहपुराण ७ । ६३—७०)

मार्कण्डेयजी बोले—जो सहस्रों नेत्रोंसे युक्त, इन्द्रियोंके स्वामी, पुरातन पुरुष तथा पद्मनाभ (अपनी नाभिसे ब्रह्माण्डमय कमलको प्रकट करनेवाले) हैं; उन श्रीनारायणदेवको मैं प्रणाम करता हूँ । मृत्यु मेरा क्या कर लेगा ? मैं अनन्त, अजन्मा, अविकारी, गोविन्द, कमलनयन भगवान् केशवकी शरण आ गया हूँ; अब मृत्यु मेरा क्या करेगा ? मैं संसारकी उत्पत्तिके स्थान, सूर्यके समान प्रकाशमान, इन्द्रियातीत वासुदेव (सर्वव्यापी देवता) भगवान् दामोदरकी शरणमें आ गया हूँ; मृत्यु मेरा क्या कर सकेगा ? जिनका स्वरूप अव्यक्त है, जो विकारोंसे रहित हैं, उन शङ्ख-चक्रधारी भगवान् अधोक्षजकी मैं शरण आ गया; मृत्यु मेरा क्या कर लेगा ? मैं वाराह, वामन, विष्णु, नरसिंह, जनार्दन एवं माधवकी शरणमें हूँ; मृत्यु मेरा क्या कर सकेगा ? मैं पवित्र, पुष्कररूप अथवा पुष्कल (पूर्ण) रूप, कल्याणबीज, जगत्-प्रतिपालक एवं लोकनाथ भगवान् पुरुषोत्तमकी शरणमें आ गया हूँ; अब मृत्यु मेरा क्या करेगा ? जो समस्त भूतोंके आत्मा, महात्मा (परमात्मा) एवं जगत्की योनि (उत्पत्तिके स्थान) होते हुए भी स्वयं अयोनिज हैं, उन भगवान् विश्वरूपकी मैं शरण आया हूँ; मृत्यु मेरा क्या कर सकेगा ? जिनके सहस्रों मस्तक हैं, जो व्यक्ताव्यक्तस्वरूप हैं, उन महायोगी सनातन देवकी मैं शरण आया हूँ; अब मृत्यु मेरा क्या कर सकेगा ?